तीसरा खंड

यादों के झरोखों से अण्णासाहब

१. उस्ताद निसार हुसेन खांसाहब २४५
२. उस्ताद खादिम हुसेन खाँ २४६
३. पं. मल्लिकार्जुन मन्सूर २४६
४. पं. भीमसेन जोशी २४७
५. श्रीमती सुमन सावुर २४७
६. पं.यशवंतबुवा जोशी २५०
७. श्री बाळासाहब पूछवाले २५१
८. डॉ. गंगूबाई हनगल २५२
९. डॉ. प्रेमलता शर्मा २५३
१०. पं. विनयचंद्र मौदगल्य २५४
११. श्री दाऊजी गोस्वामी २५५
१२. वि. दे. अंभईकर २५६
१३. प्रो. नारायण विनायक पटवर्धन २५७
१४. डॉ. अमरेशचंद्र चौबे २५८
१५. पं. दिनकर कायकिणी २५९
१६. डॉ. लालजी श्रीवास्तव २६३
१७. श्री वाय. एम. महाले २६४
१८. डॉ. देवेंद्र प्रताप जौहरी २६५
१९. स्वामी चैतन्यस्वरूप २६७
२०. श्रीमती बागेश्रीदेवी पांडे २६८
२१. स्वामी हरिप्रिसाददास २७०
२२. श्रीमती शांति सहल २७१
२३. श्री सुधीरकुमार वर्मा २७३
२४. श्री कृष्ण कुमार कपूर २७३
२५. डॉ. सुशीला पोहनकर २७४
२६. श्री कमलाकर कुलकर्णी २७६
२७. प्रो. मंजु सुंदरम २७८
२८. पद्मश्री र. कृ. फडके २८१
२९. पं. ना. र. मारूलकर २८२
३०. मास्टर कृष्णराव फुलंब्रीकर २८३
३१. पं. त्रिं. द. जानोरीकर २८४
३२. डॉ. नांगरमल सहल २८४
३३. पं. शरच्चंद्र आरोळकर २८५
३४. पं. कृष्ण मुजुमदार २८५
३५. पं. निवृत्तिबुवा सरनाईक २८६
३६. श्री जी. सी. उप्रैती २८७
३७. श्री शं. र. आळेकर २८७
३८. श्री डी. जी. फडके २८८
३९. डॉ. प्रेमसिंह किजोत २९०

चतुर्थ खंड

Articles and Memories

1. Dr. B. V. Keskar 293
2. Pt. Thakur Jaidev Singh 295
3. Shri Kumar Mukherji 299
4. Smt. Susheela Misra 303
5. Shri. Nikhil Ghosh 308
6. Shri. Bimal Mukherjee 314
7. Smt. Premlata Puri 317
8. Shri. Ramesh Nadkarni 320
9. Shri. V. S. Nigam 324
10. Shri. Mohan Nadkarni 329
11. Smt. Chitra Bailur 333
12. Rai Uma Nath Bali 335
13. Shri. T.L. Venkataramana Aiyar 338
13. Late Shri. Birendra Kishore Roy 340
14. Smt. Aparna Chakravarti 343
15. Zarin Sharma 345
16. Shri. Buddhdev Das Gupta 345
17. Shri Ganpati G. Ginde 346
18. Shri. D. T. Joshi 348
19. Pt. V. G. Jog 350
20. Shri. V. K. Kichlu 351
21. Shri. C. L. Koppikar 351
22. Shri. R. C. Mehta 353
23. Mrs. Mira Das 354
24. Smt. Dipti Nag 354
25. Pt. Ramrao Naik 355
26. Shri. N. S. Padukone 356
27. Shri. Arvind Parikh 357
28. Smt. D. K. Pattammal 358

पं. रातंजनकर मेरे शुरू के साथी

(उस्ताद निसार हुसेनखांसाहब से डॉ. के.जी. गिंडे की बातचीत से)

पं. रातंजनकर और मैं, हम दोनों बचपन से बड़ौदा में रहे हैं। मुझे वहां १९१७ में बुलाया गया था। वे १९१८ में आए। वह इत्तफाक ऐसा हुआ कि जब मैं बड़ौदा पहुंचा तब मैंने महाराज को अपना गाना सुनवाया। मेरे दादा गाए थे उस वक्त, वालिद भी गाए थे। मेरा गाना महाराजसाहब, दीवानजी, रानीसाहब सबने सुना। रानीसाहब को भातखंडेसाहब सिखाया करते। एक-दो महीनों में उनकी बारी आती। वे रातंजनकरजी को ले आए। उन्होंने फैय्याजखांसाहब से कहा, "भई, खांसाहब, मैंने इसको पंडिताई तो सिखा दी है। जो कुछ भी है 'थ्योरी' वगैरह वह सब। थोड़ा-सा गाना भी सिखाया है। गाता है, सुरीला है। अब मैं आप के सुपुर्द करता हूं, इसे। आप इसे गायकी बताएं।".... तो खांसाहब ने रातंजनकरजी को लिया। वह रोजाना आया करते थे स्कूल के अंदर। हम भी जाया करते थे स्कूल में। तो रोजाना बात होती थी उनसे। मुझे भी उनके साथ स्कॉलरशीप मिला।

रातंजनकरजी से मेरे ताल्लुकात बहुत अच्छे थे। वे मुझे भाई समझते थे। वे हमारी इतनी मुहब्बत रखते थे कि मैं बयान नहीं कर सकता। पं. भातखंडेजी के बाद रातंजनकर ही ऐसे थे कि उनका जवाब नहीं था। किसीने जवाब नहीं दिया उनका। वैसे जाननेवाले बहुत लोग और पंडत भी होंगे। मगर उनके जैसा कोई भी नहीं था। सबसे लाजवाब थे आदमी। वे आखिर तलक अपने गुरु (भातखंडेजी) के कदम-ब-कदम चलते रहे। अपने शागिर्दों को भी तैयार किया। किसीसे वकालिफत नहीं की।

ऑल इंडिया रेडियो में तो उनका बड़ा हाथ था। केसकरसाहब ने वहां उनको मुकर्रर किया था। पंडितजी का गाना मैंने कई मर्तबा सुना है। शुरू में बहुत बढ़िया गाते थे। बाद में उनकी वह मियाद कम हो गई थी। थ्योरी, पंडिताई में काफी 'टेम' (टाइम) निकल जाता था। उन्हें तो सब करना था। फिर भी अच्छा गाते थे। सुरीले थे। याददाश्त बहुत अच्छी थी। उनका राग का चलन बढ़िया रहता था। कभी गाना बिठाते थे तो सब कुछ उसके अंदर बना दिया करते थे। देखिए इसका वादी यह है, विवादी यह है। सब बताके गाया करते थे और जो सुर खास या वादी हुआ करता था उसपर ज्यादा जोर देते थे।

ऑडिशन के वक्त उनकी काफी नुक्ताचीनी हुई; लेकिन बात यह है कि जो कामयाब हो जाता है वह तारीफ ही करता है और जिसको नाकामी मिलती है वह उस आदमी को बदनाम करता है। जिसने स्थाई भरी अच्छे तरीके से वह माना जाता था। अब गायकी जो है, किसीकी कम किसीकी ज्यादा है। मगर सच्चाई जो है स्थाई-अंतरे से ही मालूम हो जाती है।

मैं कई बार इम्तेहान लेने मैरिस कॉलेज गया हूं। अल्लाउद्दीन खांसाहब आते थे; और और बड़े बड़े लोग आते थे। तो मैंने तो बेहतर बात यह कह दी कि उनके जैसा अभीतक कोई जानकार पंडिताई का, थ्योरी का, भातखंडेजी के बाद कोई नहीं हुआ।

—उस्ताद निसार हुसेन खांसाहब

सहस्वान घराने के वयोवृद्ध गायक,

संगीत रिसर्च अकादमी, कलकत्ता में उस्ताद।

रातंजनकरजी ने संगीत की महान सेवा की ।

(उस्ताद खादिमहुसेनखांसाहब से पं. एस्.सी.आर. भट की बातचीत से)

पं. रातंजनकरजी से मेरी पहली मुलाकात लखनऊ कॉन्फ्रेन्स में हुई। वहां मैंने उन्हें सुना। बहुत अच्छा गाए। खूब जवान थे। हम उस वक्त बच्चे थे। वे बहुत उमदा गाते थे। उसके बाद अर्से तक मुलाकात नहीं हो सकी। फिर जब आप बम्बई आए तब मुलाकात होती रही। गाने-बजाने का जिक्र होता था।

बाद के जमाने में वो ज्यादा गाते नहीं थे। इसके मायने यह नहीं हैं कि वे बड़े गायक नहीं थे। बंदिशें बहुत अच्छी बनाते थे, मैंने उनकी झिंझोटी की, सालगवराली की बंदिशें सुनीं। झिंझोटी में (मेरा मन हर लीनो..) उन्होंने गंधार पर मुंह रखा था।

आपने मुझे रागसंगीत में बाजे (हारमोनियम) के बारे में पूछा है, उसका उत्तर यह है कि मैं भी अण्णासाहब की तरह ही बाजे के खिलाफ हूँ। गंधार जैसे स्वर को पेटी पे सीखोगे तो वह बेसुरा हो जाएगा। गाना सीखने के लिए यह साज अच्छा नहीं।

ऑडिशन के सिलसिले में मेरे मुताबिक उन्होंने अच्छा काम किया। उनका मिजाज बहुत अच्छा था। हमारे संग तो बहुत देर तक संगीत पर बातें होती थीं। सिखाने के बारे में भी उन्होंने बहुत बड़ा काम किया है। बंदिश को कभी बिगड़ने नहीं दिया। शुद्धता को कायम रखना ही चाहिए। उसे तोड़ना बेकार है। रातंजनकर साहब ने इस उसूल को बखूबी निभाया।

—उस्ताद खादिमहुसेनखां, बम्बई
आग्रा घराने के वयोवृद्ध गायक, नायक और उस्ताद

संगीत के सच्चे व्याख्याता

(पं. मल्लिकार्जुन मन्सूरजी से डॉ. के.जी. गिंडे की बातचीत से)

पं. श्रीकृष्ण रातंजनकरजी को मैंने देखा है और सुना भी है। वे संगीत विद्या के परम विद्वान् गायक थे। संगीत का बहुत गहरा अध्ययन उन्होंने किया था। किसी राग को प्रस्तुत करते समय रागरूप के मुताबिक श्रुतियों का अनुपात कैसा होना चाहिए, इसका विचार बराबर उनके मन में रहता था। जब कभी वे राग के संबंध में तथा उसको गाने की पद्धति के बारे में समझाकर बताया करते तब उनके गहन अध्ययन की प्रतीति सहज रूप में मिलती थी। किसी भी राग में आरोह-अवरोह लेते समय स्वरों का व्यक्तित्व किस तरह बदलता है और वे उस विशिष्ट राग में किस प्रकार ढल जाते हैं उसका भी उन्हें निरंतर भान रहता था।

ऐसे विद्वान कलाकार के दर्शन संगीत-क्षेत्र में दुर्लभ हैं।

पं. मल्लिकार्जुन मन्सूर
जयपुर घराने के सुविख्यात गायक और गुरु

संगीत को उच्च कोटि के अध्ययन का विषय बनाया।

(पं. भीमसेन जोशी से पं.के.जी. गिंडे की बातचीत से)

सन १९३८-३९ की बात है। उन दिनों रामपुर के उ. मुश्ताक हुसेनखांसाहब के पास एक वर्ष में सीख रहा था। फिर लखनऊ आया। चाहता था कि ठुमरी की गायकी के बारे में निकट से कुछ जान सकूं। उस काल में सभी 'टॉप फॉर्म' में थे, सिद्धेश्वरीबाई, रसूलनबाई, बेगम अख्तर (जो उस समय बेगम नहीं थीं), अख्तरी फैजाबादी थी। वह उन दिनों खड़ी रहकर गाया करती। माइक तो था नहीं उस जमाने में। फिर भी दो-दो चार हजार आदमियों को साफ सुनाई देने जैसी आवाज उनकी थी। मैं उस वक्त रेडियो पर स्टाफ आर्टिस्ट था - सिर्फ नाम के वास्ते। १५-१५ मिनट दो बार गाना था; ३५ रुपये मिलते थे। ५-१० रुपयों से ज्यादा खर्चा नहीं था।

एक दिन मैं महाराष्ट्र मंडल में गाया। फिर अण्णासाहब के पास पहुंचा। उन्होंने बारीकी से और प्यार से पूछताछ की। मैंने उन्हें बताया कि मैं यहां गायकी सीखने और खासकर ठुमरी अंग से पहचान करा लेने के लिए आया हूं। उन्होंने प्रेमपूर्वक कहा "तुम्हें जब कभी जरूरत हो, यहां आ जाओ। उस समय आप सब लोग - भट, चिदानंद, जोग, बंदोपाध्याय सभी थे।.... अण्णासाहब का बड़ा योगदान यह है कि उन्होंने शास्त्रीय संगीत को एक ऊंचा स्थान प्रदान कर दिया। उस जमाने में संगीत के अंदर बी.ए., एम.ए., पीएच.डी ऐसा कुछ नहीं था। उसे सबसे पहले लानेवाले अण्णासाहब ही थे। गांधर्व महाविद्यालय में यह पद्धति बाद में प्रचलित हो गई। इसकी शुरुवात हुई मैरिस कॉलेज में; बाद में भातखंडे विद्यापीठ बना। बड़े बड़े उस्ताद और पंडित वहाँ सिखाने के लिए आते थे।.... रातंजनकरजी ने सुशिक्षित समाज में संगीत का प्रचार, भली प्रकार से किया । उन्होंने सरकार को भी दिखला दिया कि संगीत भी उच्च कोटि के अध्ययन का - डॉक्टरेट तक का - विषय हो सकता है। रातंजनकरजी गायक ही नहीं नायक भी थे। उनके जैसा संगीतकार पैदा होना कठिन है।

—पं. भीमसेन जोशी
किराना घराने के ख्यातिसंपन्न गानसम्राट्

दिव्य गायन और दिव्य ज्ञान के दो संस्मरण

संगीताचार्य श्रीकृष्ण नारायण रातंजनकरजी ने संगीत के क्षेत्र में इतना अलौकिक कार्य किया है कि उसपर एक ग्रंथ सहज ही में लिखा जा सकता है। लखनौ के 'भातखंडे संगीत महाविद्यालय' एवं 'भारतीय संगीत विद्यापीठ' से अवकाश प्राप्त होने तक अपने परिवार के लोगोंसे दूर, ऋषि-मुनियों की तरह व्रतस्थ रहकर , संगीत को तन-मन समर्पित कर, धन के लोभ के बिना विद्या-दान करते हुए आपने प्रमुख अध्यापक का पद विभूषित किया। पं. व्ही. जी. जोग, डॉ. एस्. सी. आर्. भट, पं. चिन्मय लाहिरी, डॉ. के. जी. गिंडे, पं. दंताळे, पं. चिदानंद

नगरकर, पं. दिनकर कायकिणी, डॉ. सुमति मुटाटकर आदि नामवर शिष्यों की एक पीढ़ी ही आपने तैयार की। देश के बड़े बड़े गायक एवं वादक कलाकार लखनौ जाकर उनसे संगीत के विषय में चर्चा किया करते थे और उनके सामने अपनी कला को प्रस्तुत करने में अपने को धन्य मानते थे। हिंदुस्तानी संगीत के विषय में श्री. रातंजनकरजी के जो अनेक विद्वत्ताप्रचुर लेख हैं वे वर्तमान एवं भावी कलाकारों एवं विद्यार्थियों के लिए अवश्य ही अध्ययन करनेलायक हैं।

ऐसे महान् व्यक्ति को पहली बार देखने और सुनने का संयोग मुझे सन् १९४८ में प्राप्त हुआ। ताड़देव के तालम की वाड़ी के हॉल में उनका गायन रखा था। हमें अपने 'भट मास्टरजी' (पं. एस्.सी.आर्. भटजी) ने बताया था कि विद्यार्थियों को उनका गाना सुनने के लिए अवश्य उपस्थित रहना चाहिए। जब हमने हॉल में प्रवेश किया तब काली शेरवानी पहने हुए एक मामूली कदवाला, छोटा-सा व्यक्ति मंच पर गर्दन झुकाकर बैठा था। उनके पीछे साथ-संगत के लिए हमारे 'भट-मास्तर' एवं पं. चिदानंद नगरकर बैठे थे। तानपूरों को बहुत अच्छी तरह मिलाया गया था। श्रोतागण में सामने विलायत हुसेनखां, खादिम हुसेनखां आदि आग्रा घराने के बुजुर्ग कलाकार एवं अन्य जानकार विद्वान् भी बैठे थे। यह तो याद नहीं कि उस समय उन्होंने कौन-सा राग गाया था, किन्तु याद आ रही है उनकी वह पतली, जव्हारीदार किन्तु उतनी ही तीक्ष्ण आवाज, तीनों सप्तकों में होनेवाला उनका वह मुक्त एवं लयबद्ध स्वर-संचार तथा उनके संगीत से तुष्ट श्रोताओं से उचित स्थान पर दी हुई दाद! गाते समय हाव-भाव या अंग-विक्षेप नहीं था, बल्कि थोड़े से झुककर ही गाते थे। बीच ही में श्री नगरकरजी की साथ-संगत में कुछ गड़बड़ी होती देखकर वे रुक गए। अण्णासाहब (रातंजनकरजी) ने उनकी ओर तिरछी दृष्टि से देखा। और उत्स्फूर्त रूप में तार सप्तक का ऐसा षड्ज लगाया कि हम सब गद्गद् हो गए। उसके बाद बड़ी तबियत से राग का चलन गाते हुए मध्य सप्तक के 'सा' पर आकर वे स्थिर हो गए। श्रोताओं ने "वाह! क्या बात है!" कहकर दाद फर्माई, बीच ही में तालियों की कड़कड़ाहट से उन्होंने रसभंग नहीं किया जैसा कि आजकल के श्रोता करते हैं। उसके पश्चात् पूरी महफिल में श्री नगरकर जरा सम्हलकर ही गा रहे थे। वस्तुतः नगरकर के रोष से हम विद्यार्थी बहुत ही डरते थे, किन्तु उन्होंने अत्यंत विनम्रता के साथ की हुई साथ-संगत को देखकर हमें यह बात जंच गई कि हमारे गुरुजी के गुरुवर संगीत-क्षेत्र के एक अत्यंत मान्यवर विभूति हैं।

आगे चलकर गाना सीखने के क्रम में हम उनकी बनाई हुई बंदिशों को गाने लगे। खमाज राग की 'सखि सांवरो गिरिधर गोपाल' बंदिश गाते समय हमारी सांस घुटती थी। झिंझोटी राग की दूसरी मात्रा से शुरू होनेवाली त्रिताल की 'मेरो मन सखि हर लीनो सांवरिया ने' बंदिश, तो खंबावती राग की 'लाज शरम तोको, नहिं आवे', बिभास एवं खट राग की 'बंधा समा सुर लय राग ताल सो', बंदिशों में शब्द सचमुच ही सुर, लय एवं ताल में नाचते-ठुमकते हुए आते हैं। यहां केवल उदाहरणों के तौर पर उनका उल्लेख किया है। उनकी एक एक बंदिश विविध तालों एवं रागों का मानो एक-एक बगीचा ही है। ऐसे चार सौ से भी अधिक बंदिशों के बगीचे उन्होंने अनेक रागोंमें खिलाए हैं, सजाए-संवारे हैं। 'सास एवं ननद'वाली पुरानी बंदिशों की अपेक्षा भिन्न किन्तु उच्च श्रेणी की, शृंगार एवं उदात्त भक्तिरस से सराबोर, अनेक बंदिशें उन्होंने बनाईं। उन्होंने संस्कृत विषय में बी.ए. की उपाधि प्राप्त की थी। पुराने संस्कृत

ग्रंथों के अनुसंधान द्वारा दक्षिणादि पद्धति के अनुरूप उन्होंने संस्कृत में 'वर्णम्', भजन एवं ख्याल रचे और गाकर उन्हें लोकप्रिय बनाया। इस अनुसंधान की विरासत उन्होंने अपने गुरुवर पं. भातखंडेजी से ही प्राप्त की थी।

अण्णासाहब का रागों एवं तालों पर इतना प्रभुत्व था कि किसी कलाकार के एक राग को एक ताल में गाते समय उसे सुनने के साथ ही साथ वे वहीं अन्य राग की बंदिश अन्य ताल में रचते थे। सर्वसाधारणतया कलाकारों के लिए मामूली गुनगुनाना भी असंभव होता है। पं. रविशंकर जैसे जगद्विख्यात् कलाकार उन्हें कितना मानते हैं, आगे के एक प्रसंग से प्रमाणित हो जाएगा। लगभग पंद्रह-बीस साल पहले उनके द्वारा महफिल में बजाए गए एक विशिष्ट राग की शुद्धता के विषय में आलोचकों ने समाचारपत्रों में उनकी बड़ी सख्त आलोचना की थी। तब उन्होंने अपने बंधु (श्री राजेंद्रशंकरजी) से कहा था कि राग की शुद्धता के विषय में वे केवल डॉ. रातंजनकरजी के मत को प्रमाण मानते हैं। श्री अण्णासाहब की जवानी में संपन्न महफिलों के विषय में अनेक बुजुर्ग लोग उनकी मन:पूर्वक प्रशंसा करते हैं, किन्तु दुर्भाग्य से आकाशवाणी के उनके जो रेकॉर्ड उपलब्ध हैं वे उनके वृद्धापकाल में लिए गए होने से वर्तमान पीढ़ी के लिए उनकी कला एवं विद्वत्ता की सही कल्पना करना मुश्किल है।

हिंदुस्तानी संगीत को समृद्धि प्रदान करने के लिए उन्होंने 'तन मन धन सब वारूं' वृत्ति से अपने को समर्पित किया था। हिंदुस्तानी संगीत का यह सौभाग्य है कि उन जैसा श्रेष्ठ वाग्गेयकार, संगीतकार, कलाकार एवं गुरु इस शती में पैदा हुआ। किन्तु बड़े खेद की बात है कि उनके इस महान् कार्य का गौरव उनके जीवन-काल में नहीं हुआ और उन्हें अपेक्षित लोकप्रियता प्राप्त नहीं हुई। उन्होंने अपनी 'सरस्वती-वंदना' में कहा है।

"ध्यानगंधं तथा ध्वानधूपं साहित्यरूपिणीम्।
समर्पयामि तेद्यश्री भक्तिभाव पुरस्सरम्॥
अभिषेक: स्वरासन्तु सुशब्दाकुसुमान्यपि।
लयोर्घ्यमाचरेद्रागा रसात् नैवेद्यरूपिण:॥"

(हे देवी! मैं आपकी सेवा में ध्यान, गंध एवं धूप साहित्य रूप से ही भक्ति-भाव से समर्पित करता हूँ। स्वरों का ही अभिषेक, सुंदर शब्द ही मानो फूल, लय का अर्घ्य और उस गति से निर्मित रागस्वरूप ही मेरा नैवेद्य है।)

श्रीमती सुमन सावुर, बंबई
(सर्वश्री चिदानंद नगरकर, एस.सी.आर. भट तथा
के.जी. गिंडे की शिष्या)

अनोखा स्नेह और वैसी ही कर्तव्यदक्षता

सन १९६४-६५ में, गणेशजी के उत्सव में प्रथम बार ही लखनौ, कानपुर, बनारस आदि स्थानों पर कार्यक्रम के लिए जानेका अवसर प्राप्त हो गया था। उस समय मैं पहले कानपुर के 'महाराष्ट्र मंडल' में कार्यक्रम संपन्न करके फिर लखनौ गया। इस कार्यक्रम को सुनने के लिए स्वयं पं. अण्णासाहब उपस्थित थे। उन्हें कार्यक्रम बहुत पसंद आया और मेरे बारे में

उन्होंने गौरवोद्‌गार प्रकट किए तथा उसके पश्चात् मेरे दो-एक खानगी कार्यक्रम उन्होंने स्वयं अपनी ओर से तय कराए। वे कार्यक्रम संपन्न होने के बाद उन्होंने लखनौ के 'भातखंडे ॲनिव्हर्सरी रवीन्द्र थिएटर' में आयोजित कार्यक्रम में गाने के लिए मुझसे बिनती की। किन्तु उस कार्यक्रम के लिए १०-१२ दिन की अवधि शेष होने से, मेरी कठिनाई को जानकर उन्होंने कहा, "१०-१२ दिन तक आपके रहने और भोजन आदि का प्रश्न है, उसके लिए आप अपना बोरिया-बिस्तर लेकर नि:संकोच मेरे यहां ठहरने के लिए आ जाइएगा।"

अण्णासाहब जैसा व्यक्ति मुझ जैसे कलाकार से इतनी आत्मीयता से पेश आए, इसकी मुझे बेहद खुशी हुई। मैंने इसे अपना सौभाग्य समझकर उनके सान्निध्य में १०-१२ दिन व्यतीत किए। आगे चलकर उक्त 'भातखंडे उत्सव' में मेरा कार्यक्रम संपन्न हुआ। कार्यक्रम अच्छा रहा। उचित मानधन एवं यात्रा का किराया देकर उन्होंने मुझे बंबई भेजा। मैं अपना यह बड़ा भाग्य मानता हूं कि उपर्युक्त वास्तव्य में उनसे मुझे कुछ शिक्षा का भी लाभ हुआ। तत्पश्चात् यह स्नेह बढ़ता ही गया। उसके बाद आगे चलकर जब वे बम्बई आए तब मेरे यहाँ भोजन आदि करके उन्होंने खूब गपशप भी की। यह था पं. अण्णासाहब का महान् व्यक्तित्व!

'आकाशवाणी' की ओर से जब कलाकारों की जांच-परीक्षाएं चल रही थीं, उस वक्त परीक्षक की हैसियत से उनके विषय में प्राप्त अनुभव को आगे बता रहा हूं।

उस समय पैनल में पं. अण्णासाहब थे, और सब कलाकारों ने ऑडिशन पर बहिष्कार डाला था। किन्तु उस हड़ताल में मैं शामिल नहीं था। जो कलाकार पात्र नहीं थे, उनकी परीक्षा के उपरान्त उनकी अपनी अपनी लियाकत के अनुसार उनका स्तरीकरण हुआ। उस वक्त, जो पात्र नहीं थे उन्होंने अण्णासाहब पर न जाने कैसे कैसे आरोप किए। किन्तु जब मैं ऑडिशन के लिए गया तब उन्होंने ४५ मिनट तक परीक्षा ली। उन्होंने मुझसे न तो कोई टेढ़ा-मेढ़ा प्रश्न ही किया न मुझपर कोई अन्याय ही । जो पात्र व्यक्ति थे उन्हें उचित न्याय ही मिला। मेरी दृष्टि में अण्णासाहब सचमुच सत्य को सत्य के रूप में स्वीकारनेवाले, किसी भी घराने के प्रति कोई भी पूर्वाग्रह न रखनेवाले, सच्चे विद्वान् व्यक्ति थे। परीक्षक के नाते वे असल में सुयोग्य व्यक्ति ही थे।

पं. यशवंतबुवा जोशी

जानेमाने महफिली गायक और सिद्धहस्त गायनगुरु, बम्बई

ऐसा गायन, ऐसी बंदिशें और 'वह' भैरवी!

गुरुवर के प्रथम दर्शन मुझे सन १९३४ में परीक्षक के रूप में हुए। तब मैं 'माधव संगीत विद्यालय' में चतुर्थ वर्ष में पढ़ता था। मेरे पूज्य पिता स्वर्गीय राजाभैया और बाबूराव के आपस में बंधुवत् प्रगाढ़ स्नेह होने से वे प्रतिवर्ष ग्वालियर में जब परीक्षक के रूप में आते थे, तब मेरे यहाँ ही ठहरते थे। सन १९३४ से १९४५ तक उनके सान्निध्य का मुझे पर्याप्त लाभ हुआ। इस कालावधि में अतीव निकट का संबंध जुड़ जाने से उनके व्यक्तित्व का मुझे पूर्ण परिचय प्राप्त हो गया।

स्व. गुरुवर के गीत-संग्रह से ज्ञात होता है कि वे मराठी, उर्दू, गुजराती, बंगला, संस्कृत

आदि अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे। एक ही व्यक्ति में उत्तम शिक्षक, गायक एवं रचनाकार के गुण एक साथ मिलना असंभव है। किन्तु मुझे उनमें ये तीनों गुण दृष्टिगोचर हुए। जितनी तैयारी के साथ वे प्रचलित राग प्रस्तुत करते थे उतनी ही तैयारी के साथ वे अप्रचलित रागों का भी प्रस्तुतीकरण करते थे। मेरी राय में सन १९३६ से १९५५ तक की कालावधि को उनके गायन का उत्कृष्ट काल मानना चाहिए। उनके गायन पर आगरा घराने के आफताबे मौसिकी मरहूम फैयाजखांसाहब का अत्यंत प्रभाव था। राग को प्रारंभ करनेसे पहले वे उत्कृष्ट नोम् तोम् की सहायता से ख्याल का वातावरण निर्माण करते थे। जिन जिन लोगोंने उन्हें सुना हो, वे इस बात को जानते ही होंगे। उनकी कल्पनाशक्ति गजब की थी। उनकी साथ-संगत करने का सौभाग्य मुझे सन १९३६ से १९५५ तक निरंतर रूप में प्राप्त होता रहा। उनके सान्निध्य के फलस्वरूप अप्रचलित राग सीखने और उनके साथ गाने का संयोग बराबर प्राप्त हुआ करता था और कई बार तो, लखनऊ के वास्तव्य में वे मुझे अपने यहां रख लेते थे। और अन्य छात्रों को पढ़ाते समय प्रत्येक अप्रचलित राग की विस्तारपूर्वक जानकारी दे देते थे।

उनकी खुद की रची हुई अनेक बंदिशें गानेके लिए उन्होंने छात्रों को तैयार किया। वे राग-विस्तार, बोलतानों, तानों आदि के विषय में विस्तृत जानकारी दिया करते थे। नई 'बंदिश' तैयार होनेपर उसकी प्रतिलिपि वे मुझे भेजा करते थे और यद्यपि मैंने उसे रियाज द्वारा तैयार किया भी हो तो भी उसके महत्त्वपूर्ण शब्द एवं स्वरोच्चार वे ठीक-ठाक कर देते थे। चूंकि मैंने उनके गाने की अनेक महफिलें सुनी हैं, उनके गायन का मुझपर प्रभाव था और आज भी है। उनका गाना समाप्त होने पर भी मेरे दिमाग में उनके ही विचार चक्कर काटते थे। कई बार तो नींद में भी वे सामने आते। हम दोनों की आवाजों का गुण-धर्म मिलता-जुलता होने से, उस जमाने में मेरे गायन के समय लोग कहा करते थे कि उनके गायन का मुझ पर अधिक प्रभाव पड़ा है। कई बार तो लोग कहते - "अपने पिताजी को भी भुला मत देना!"

एक बार जब दिल्ली रेडिओ पर उनका कार्यक्रम था, मैं साथ-संगत के लिए उनके साथ था। शाम को कार्यक्रम समाप्त होने के तुरंत डेढ़ घंटा बाद उनका पुन: कार्यक्रम था और उन्होंने गानेके लिए 'मारु बिहाग' राग मुकर्रर किया था। मैं उनके कार्यक्रम के बाद पास ही के पार्क में विश्राम कर रहा था। उसी समय उन्होंने मारू बिहाग में 'ब्रिज जुवति संग' बंदिश बनाकर उसे तुरंत कार्यक्रम में प्रस्तुत भी किया। दूसरे दिन के प्रात:काल के कार्यक्रम के लिए उन्हें 'पंचम' राग गाने के लिए कहा गया था। सब कार्यक्रम समाप्त होनेपर भोजन आदि के उपरान्त हम बैठ गये और उन्होंने 'पंचम' राग की बंदिश तैयार करके उसे प्रात:काल के कार्यक्रम में पेश किया। इस प्रकार, बंदिशें रचने का उनका कौशल उत्कृष्ट था।

दूसरा एक प्रसंग मेरे स्मरण में है। मुझे सूचित किया गया कि 'रेडिओ संगीत संमेलन' में मुझे हमीर राग में 'टप ख्याल' गाना है। उस समय मैं खैरागढ़ में था। मेरे साथ उन्हें भी सम्मेलन में गाने के लिए आता था। मैंने उनसे हमीर के 'टप- ख्याल' के बारेमें बात की, क्योंकि मैं वह जानता नहीं था। किसी काम से हम दोनों नागपुर में रुक गए थे। काम खत्म करके रात को हम बैठ गए। उन्होंने 'जाग रही सगरी रतिया' टप्पे-ख्याल की रचना करके मुझसे उसे तैयार कराया। तत्पश्चात् दिल्ली जाने के लिए जी.टी. से यात्रा करते समय गाड़ी में ही उन्होंने बिहाग का पंजाबी शब्द लेकर 'दिल दा प्यारा' टप्पे की रचना की और मुझे दे दी। इस प्रकार दोनों रागों में रचना तैयार होनेसे मुझे तो लाभ हुआ ही, साथ ही दूसरों

को भी उससे फायदा हुआ।

यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि उस जमाने में साधनों की कमी होनेसे वे बंदिशें आज लोगों को सुनने के लिए उपलब्ध नहीं हैं। उनके साथ साथ-संगत करना अत्यंत मुश्किल लगता था। अर्थात् प्रचलित रागों में विशेष कठिनाई महसूस नहीं होती थी किन्तु अप्रचलित रागों में बेहद परेशानी होती थी। किन्तु वे स्वयं गाते समय मुझसे भी गवाते थे और इस प्रकार भी उनसे शिक्षा ग्रहण करने का सुयोग मुझे प्राप्त हुआ।

एक बार ग्वालियर में महफिल खत्म होने पर उन्होंने भैरवी गाना प्रारंभ किया। भैरवी के विषय में यह कल्पना रूढ़ है कि उसमें बारह स्वरों का उपयोग किया जाता है। पुराने लोग भी भैरवी में केवल शुद्ध ऋषभ एवं तीव्र मध्यम का प्रयोग मजे के तौर पर करते हैं, किन्तु आपने जो भैरवी गाना शुरू किया वह शुद्ध भैरवी थी। उसमें इनमें से किन्हीं ऐसे स्वरों का प्रयोग गाना खत्म होने तक मैंने नहीं सुना। बहुत ही कठिन कार्य था। ऐसी भैरवी मैंने कभी सुनी नहीं। ऐसे थे हमारे गुरुवर! उन्हें मेरे शत कोटि प्रणाम!

—बाळासाहब पूछवाले, भोपाल

पं. राजाभैय्याजी के सुपुत्र। माधव म्यूजिक कॉलेज, ग्वालियर के भूतपूर्व प्राचार्य

पं. रातंजनकरजी से भेंट की स्मृतियां

पं. रातंजनकरजी से मेरी पहली भेंट सन १९४३ में लखनौ में हुई। अपने आकाशवाणी कार्यक्रम के सिलसिले में लखनौ गई थी तब पं. रातंजनकरजी ने मुझे वहाँ के मैरिस कालेज में कार्यक्रम देने के लिए आमंत्रित किया था। मेरे उस कार्यक्रम को सुनने के लिए पांच सौ से ऊपर छात्रगण उपस्थित थे। मैंने उस समय राग पूरिया और सुहा प्रस्तुत किए थे।

हर साल मैं अपने कार्यक्रम के निमित्त से दो-तीन बार लखनौ अवश्य जाती थी। जब जब मैं वहां जाती थी तो उनसे मेरी भेंट अवश्य हो जाती थी। काफी मिलनसार व्यक्तित्व था उनका। संगीत के उत्कष्ट गायक तथा शास्त्र के गाढ़े आचार्य थे वे। उन्होंने अनेक रागों में काफी बंदिशें लिखी हैं। उनकी रचनाओं में राग केदार-बहार, प्रभात-भैरव की बंदिशें मुझे अच्छी लगीं।

एक बार उनके विद्यापीठ में मुझे उनका गायन सुनने का अवसर मिला था। उन्होंने राग शुद्धसारंग प्रस्तुत किया था जो काफी प्रभावशाली था।

आकाशवाणी पर हार्मोनियम के निर्बंध पर अक्सर मेरी उनके साथ चर्चा होती थी। उनका कहना था कि गायन की साथ-संगत के लिए सारंगी वाद्य अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुआ है, अपितु आजकल सारंगी, पखावज, बीन आदि वाद्य लुप्त हो रहे हैं। अत: उनको संरक्षण देने के लिए विशेषत: सारंगी को संरक्षण देने के लिए हार्मोनियम वाद्य को रेडियो पर निर्बंधित किया गया है।

संक्षेप में कहा जाए तो पं. रातंजनकरजी काफी मिलनसार व्यक्ति थे। संगीत के विद्वान थे। उनका सदैव हंसमुख चेहरा मैं अभी भी भुला नहीं पा रही हूं।

—डॉ. गंगूबाई हनगल, हुबली

किराना घराने की भारतविख्यात गानसम्राज्ञी

पुण्य स्मृति में शतशः नमन

पं. रातंजनकरजी के सर्वप्रथम दर्शन सन १९४९ में लखनऊ में मध्यमा परीक्षा में बैठते समय हुए थे। उन दिनों ये और पं. राजाभैया पूंछवाले क्रियात्मक परीक्षा के परीक्षक हुआ करते थे। परीक्षा का जो आतंकमय स्वरूप उन दिनों हुआ करता था उसकी कल्पना भी आज के परीक्षार्थी नहीं कर सकते। बड़े-से कमरे के एक सिरे पर बैठे परीक्षकद्वय और दूसरे सिरे पर बैठा परीक्षार्थी। दोनों के बीच की देशगत दूरी विलक्षण 'आतंक' की सृष्टि करती थी। इतना ही स्मरण है कि जो कुछ भी पूछा गया था, सब कुछ मैंने गाकर सुना दिया था।

दूसरी भेंट सन १९५५ के आरंभ ही में पटना के एक महाविद्यालय में संगीत-प्राध्यापिका के पद के लिए साक्षात्कार के प्रसंग में बिहार लोकसेवा आयोग के कार्यालय में हुई। पं. रातंजनकरजी विशेषज्ञ (Expert) के रूप में वहां थे। उन्होंने जो भी प्रश्न पूछे थे, उनमें से एक ही का विशेष स्मरण बना रहा है और वह है 'स्थाय'। मैंने तबतक 'स्थाय' का नाम नहीं सुना था। घर लौट कर 'संगीत रत्नाकर' का 'स्थाय' प्रकरण पढ़ा और दस वर्ष बाद १९६५ में 'स्थाय' पर एक लंबा लेख लिखा जो कि दिल्ली से प्रकाशित 'इंडियन म्यूजिक जर्नल' में तीन खण्डों में प्रकाशित हुआ था।

तीसरी और अंतिम भेंट दिल्ली में आकाशवाणी द्वारा आयोजित एक 'सेमिनार' में सन १९७० में हुई थी। उसीकी सबसे सुखद स्मृति चित्त पर अंकित है। उन्होंने भारतीय संगीत के सूक्ष्म अंतरालों के लिए हामोर्नियम की अनुपयुक्तता का जम कर सोदाहरण प्रतिपादन किया था। 'ललित' के तीन मध्यम - शुद्ध, तीव्र और अति तीव्र - गाकर बताए थे। मैंने भी अपने ढंग से हार्मोनियम का विरोध किया था। दूसरे दिन आकाशवाणी के किसी कार्यालय में उनसे भेंट हो गई। तब उन्होंने मुक्त भाव से मेरे विषय-प्रतिपादन का समर्थन करते हुए भरपूर आशीर्वाद दिया था। पीठ पर हाथ रखकर आशीर्वाद की अभिव्यक्ति को उत्कटता दी थी। वही स्मृति मेरे लिए अमूल्य है।

परीक्षक के रूप में असंख्य जनों को उनके दर्शन मिले होंगे। शिक्षक के रूप में उससे कम संख्या के जन उनके संपर्क में आए होंगे। गायक के रूप में अनेकों श्रोताओं का उनसे संपर्क हुआ होगा। मैंने शायद सन ५० में मथुरा के 'किशोरीरमण कन्या महाविद्यालय' में उनका गायन सुना था। तब विशेष समझ तो थी नहीं। फिर भी जो कुछ स्मृति है, वह सुखद है, मधुर है। संगीत-शास्त्र का चिंतन-मनन, गायन का अभ्यास, शिक्षण में तत्परता और निष्ठा, ये सब गुण एक साथ उनमें विद्यमान थे। उनकी पुण्य - स्मृति में शतशः नमन !

—प्रेमलता शर्मा
विख्यात संगीत विदुषी,
बनारस हिंदू युनिवर्सिटी संगीत विभाग (भूतपूर्व) अध्यक्षा,
संप्रति बेजंट कॉलेज, वाराणसी में संगीत की प्रोफेसर)

आदत, जिगर और हिसाब

मैं उन दिनों पूना के गांधर्व महाविद्यालय में स्व. गुरुवर्य पं. विनायकराव पटवर्धन के निर्देशन में संगीत का अध्ययन कर रहा था । सन १९३७ दिसंबर मास में बलरामपुर रियासत तथा आगरा में होनेवाले संगीत-समाराहों में भाग लेने के लिए पंडितजी मुझे साथ लेकर लखनऊ आए थे । तभी मैंने पहली बार स्व. अण्णासाहब (पं. श्रीकृष्ण नारायण रातंजनकर) के दर्शन किए थे । उस समय के भातखंडे संगीत महाविद्यालय (तब मैरिस कॉलेज ऑफ म्यूजिक) के आश्रमवासी छात्रों को तालीम दे रहे थे । उनके सिखाने के ढंग से मैं बहुत प्रभावित हुआ । कुछ ही दिन बाद बलरामपुर के समारोह में उनकी गाई हुई 'नायकी कानड़ा की बंदिश 'पापी हरि मुख बोल' अभी तक मुझे स्मरण है । प्रशिक्षण की समाप्ति पर सन १९३९ में दिल्ली आकर गुरुजी के आदेशानुसार गांधर्व महाविद्यालय का आरंभ मैंने किया । संभवत: सन ४४ या ४५ में अण्णासाहब दिल्ली आकर श्री गोपालराव रानड़े के यहां ठहरे थे । उन्हींके घर पर गायन की बैठक का आयोजन था । इस अवसर का लाभ उठाने के लिए मैं भी अपनी पत्नी सौ. पद्मादेवी के साथ वहां पहुँचा था । अनेक परिचित रागों के बाद रातंजनकरजी ने एक अप्रचलित राग प्रस्तुत किया । न समझ पाने पर राग का नाम जानने की इच्छा पद्मादेवी ने व्यक्त की । न जाने किस कारण वे एकदम रुष्ट हो गये । बोले- "राग का नाम क्रमिक पुस्तकमाला के भाग अमुक के पृष्ठ अमुक पर देख लेना । " उनका कथन सुनकर सन्नाटा छा गया । सभी हतप्रभ होकर रह गये ।

संभवत: बाद में उन्होंने स्वयं महसूस किया कि यह ठीक नहीं हुआ । उनके हृदय की विशालता का परिचय अगले दिन मिला जब उनका एक शिष्य स्वयं उनके हाथ का लिखा पत्र लेकर मेरे पास आया । लिखा था- "कल के अशिष्ट व्यवहार के लिए क्षमा चाहता हूं । क्रमिक पुस्तक में राग का नाम गलत छपा है । मेरे गाए पटबिहाग पर नटबिहाग और नटबिहाग पर पटबिहाग छपा है । "

इसके बाद क्रमश: यह परिचय घनिष्ठता में परिणत हुआ । विद्यालय की 'संगीत सलाहकार समिति' की सदस्यता उन्होंने सहर्ष स्वीकार की । समय-समय पर विद्यालय में आकर प्रशिक्षण के संबंध में मार्गदर्शन भी किया । उनका यह कथन मुझे पसंद आया कि क्लास में पुस्तक मत आने दो, प्रत्यक्ष स्वयं गाकर ही तालीम दो । विद्यालय द्वारा आयोजित अनेक आयोजनों में अध्यक्ष, वक्ता और कलाकार के रूप में उन्होंने भाग लिया । स्व. पं. ओंकारनाथ ठाकुर के साथ उनका तीव्र मतभेद सर्वविदित है । 'आदत, जिगर और हिसाब' विषय पर अण्णासाहब के भाषण के बाद, भाषण के अंतिम भाग के समय पं. ओंकारनाथ जी भी पहुंच गए । पंडितजी ने बिना सुने ही अण्णासाहब के मंतव्यों का समर्थन किया जो हम सबके लिए सुखद आश्चर्य था । बाद में अत्यंत सौहार्दपूर्ण वातावरण में चाय-चिवड़ा का आस्वाद लेते हुए दोनों दिग्गजों का छायाचित्र मेरे पास अभी भी सुरक्षित है ।

कलाकार, गुरु, विचारक, वक्ता तथा वाग्गेयकार के रूप में भारतीय संगीत के प्रति अण्णासाहब का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है ।

– पं. विनयचंद्र मौद्गल्य

पं. विनायकबुवा के पट्टशिष्य, गायक एवं वाग्गेयकार, श्रेष्ठ संगठक एवं गांधर्व महाविद्यालय दिल्ली के प्रिंसिपल।

सम्मान-भावना

मैं तो यह समझता हूं कि सभी दिशाओं में आचार्य रातंजनकरजी के कार्य और व्यापक विचार, लगन एवं प्रयास से राग की शुद्धता को लेकर एक अपूर्व जागृति संगीत के क्षेत्र में पैदा हुई थी। आज भी यदि कोई रागदारी का प्रदर्शन करता है तो प्रतिष्ठित कलाकार हो या नवोदित ही क्यूं न हो, यदि उसका कभी भी आचार्य रातंजनकर जी से साक्षात् हुआ है तो राग की शुद्धता को ध्यान में रखते समय उनका स्मरण आना एक स्वाभाविक बात है । मैं तो यह भी प्रतीत करता हूं कि आज उनके न रहने से रागदारी गायन-वादन में जो डर-सा बना रहता था वह समाप्त होकर स्वतंत्रता का रुख अपनाया जा रहा है, क्यूंकि अब कोई टोकनेवाला नहीं, यदि कोई बात सामने आती है तो वह 'घराने' की आड़ में अड़ जाती है ।

आचार्य रातंजनकरजी के व्यक्तित्व को किसी सीमा में बांधना संभव नहीं, जैसा कि मैंने उनके इतने समय-काल के सान्निध्य में रह कर जाना, वे किसी भी समय खाली बैठे मुझे नजर नहीं आए, मैं तो यही कहूँगा कि संगीत के लिए ही उन्होंने जन्म लिया और निरंतर भगवती शारदा की सेवा एवं चिंतन में ही अपनेको पूर्ण समर्पित कर दिया, वे सदैव ही सच्चाई और नवीनता तथा शुद्धता के प्रतीक थे ।

आचार्य की गायकी में विशेष रंग ग्वालियर और आगरा घराने के ज्यादे परिलक्षित होते थे, आलापचारी में जोड़ आलाप, चार अंगों में राग की पूर्ण अभिव्यक्ति, गमक, जोरदार आवाज तथा तानों में उनका एक अलग रंग झलकता था, साथ ही जिन रागों में बंदिशों का अभाव था उन रागों में नवीन रचनाओं का सृजन कर संगीत-प्रेमियों के संगीत-पथ को और आलोकित करने का उन्होंने प्रयास किया, इन अनेक विशेषताओं का किसी एक व्यक्ति में होना असाधारण ही कहा जाएगा, अतएव सच्चे माने में उनको 'गंधर्व' की संज्ञा देना तथा सम्पूर्ण 'वाग्गेयकार' ही कहना उचित होगा ।

—दाऊजी गोस्वामी
अवकाशप्राप्त प्राध्यापक,
भातखंडे हिंदुस्तानी संगीत महाविद्यालय, लखनऊ

संगीत की दुनिया का कर्ण

१९३२ साल में नागपुर के मनहर गायन समाज में मैंने प्रथमत: स्वर्गीय डॉ. रातंजनकर का गायन सुना जिसमें उनका गाया हुआ 'जयजयवंती' राग कभी नहीं भूल सकता। मैं तानपूरा बजाकर कंठ-साथ भी करता था। कुछ सालों के बाद जब मैं स्थायी रूप में रहने लगा तब अण्णासाहब से मिलने का मौका बार बार मिलता रहा। भारतीय संगीतकार एवं तज्ञ ही केवल अण्णासाहब को मानते थे सो नहीं, दक्षिण भारत में भी उनकी विद्वत्ता पहुंच गई थी। १९४१ में जब मैं मद्रास, कुंभकोणम् के संगीत-महोत्सव में कार्यक्रम के लिए गया था, तब दाक्षिणात्य संगीत के विद्वान डॉ. अद्यनथैया ने अण्णासाहब की स्तुति की थी। अन्नामलाई युनिवर्सिटी के संगीत विभाग के प्रमुख विद्वान टायगर वरदाचारी ने भी उनकी प्रशंसा की थी ।

मैं जब बंबई आकाशवाणी पर म्युझिक प्रोड्यूसर के नाते काम करता था, तब रातंजनकरजी

लखनौ से बंबई आकर म्युजिक ऑड़िशन लेते थे। वे स्वभाव से सरल, स्पष्ट तथा निरंहकार थे। कलाकारों से बातचीत करते समय वे कभी मीठा कभी कड़वा बोलते थे। लेकिन मन बिलकुल साफ था। एक दिन सुबह मैंने अण्णासाहब को चाय के लिए घर पर आमंत्रित किया। तो चाय के नाम पर वह एक छोटी महफिल ही हो गई। बारा बज गए, रेड़ियो की गाड़ी उन्हें ले जाने के लिए आ गई। मैंने कहा "आप भोजन करके निकलेंगे तो जरा आराम मिलेगा"। बड़ी खुशी से यह बात उन्होंने मान ली। भोजन के बाद हम दोनों रेड़ियो स्टेशन पर पहुंचे। रास्ते में हमारी रागदारी पर चर्चा अधूरी हुई। दूसरे दिन मुझे अण्णासाहब ने अपने घर बुलाया। इस सुवर्ण अवसर का लाभ उठाने हेतु मैंने हिंडोल और यमन रागों के मेल से बना हुआ 'यमनी हिंडोल' का स्वरूप गाकर बताया। अण्णासाहब ने आधा घंटा कुछ पुराने ग्रंथ और किताबें देखकर और कुछ आधार है या नहीं इसे देखकर यह नतीजा निकाला कि अभीतक संगीत-तज्ञों या कलाकारों ने इस राग का निर्माण नहीं किया था। इस राग में चीज बंदिश बनाना तो चाहता था, किंतु सफल नहीं हो रहा था। सुनकर अण्णासाहब ने कहा "मैं अभी बनाता हूँ।" और एक घंटे में दो चीजों की बंदिश बनाई। एक झपताल में और दूसरी तीन ताल में। अण्णासाहब ये दोनों चीजें गाते समय बीच में रुककर पूछते थे, "मेरी रचना सही है? कुछ स्वरों में, शब्दों में अगर गलती हो तो बता देना। मैं सब ठीक करूंगा।" यह सुनकर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। कितना सरल, और निरहंकार स्वभाव! इसलिए डॉ. रातंजनकर को संगीत-दुनिया का 'कर्ण' कहने में मैं अतिशयोक्ति नहीं समझता ।

–वि. दे. अंभईकर, बंबई
श्रेष्ठ गानसाधक, आकाशवाणी संगीत-निर्माता (भूतपूर्व)

गायकी का अनुपम नमूना

स्व. रातंजनकरजी एक संगीत परिषद के लिए पूना आए थे। उसी वक्त उनसे नजदीक से संपर्क पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस परिषद के अवसर पर मैंने एक निबंध 'ठाठ पद्धति' के बारे में पढ़ा था। उस संबंध में स्व. रातंजनकरजी से व्यक्तिश: सविस्तार चर्चा मैंने की। चर्चा में उनका स्नेह तथा सौहार्द मुझे प्राप्त हुआ। पूना से वापस जाने पर उन्होंने मेरे स्वर्गीय पिताजी को लिखी हुई चिट्ठी में लिखा था कि आपके सुपुत्र ने विरोध-भक्ति से ही सही, भातखंडेजी के ग्रंथों का अच्छा अध्ययन किया है ।

बाद में कई बार उनसे मिलने तथा कई विषयों पर चर्चा करने के अवसर पर मुझे प्राप्त हुए। कौशी कानड़ा की द्रुत बंदिश के बारे में तथा उस राग के स्वरूप के बारे में मैंने चर्चा की। मालकंस तथा बागेश्री (जो अष्टादश कानड़ों में से एक माना गया है) के संयोग का विवेचन उन्होंने किया था। चर्चा में वे बहुत गहराई से और विश्वास के साथ बातचीत करते थे। शंका पूछनेवाले व्यक्ति को निरुत्साहित करने की उनकी वृत्ति नहीं थी ।

वे जब खैरागढ़ गए तो नागपुर आकाशवाणी का कार्यक्रम करने नागपुर आते थे। मैं उन दिनों नागपुर आकाशवाणी केंद्र पर कार्यरत था। प्रचलित राग श्रोता आपसे सुनना चाहते हैं

स्व. राजकुमारी इंदिरा

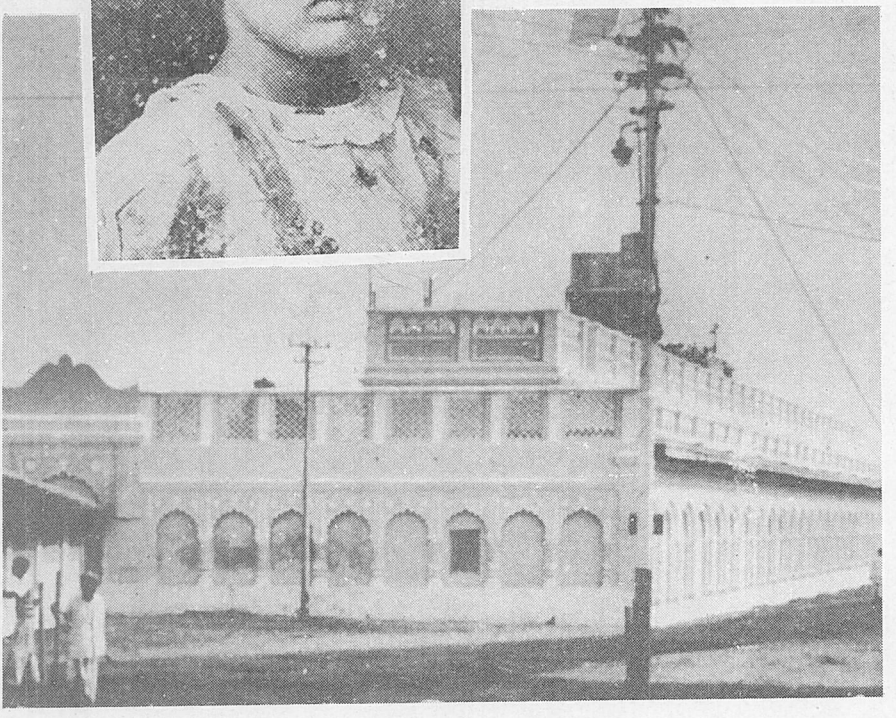

स्व. राजकुमारी इंदिरा की स्मृति में खैरागढ़ विश्वविद्यालय स्थापित हुआ.....
उसका भव्य भवन

इं. क.सं. विश्वविद्यालय के उपकुलपति की मुद्रा में
डॉ. रातंजनकर

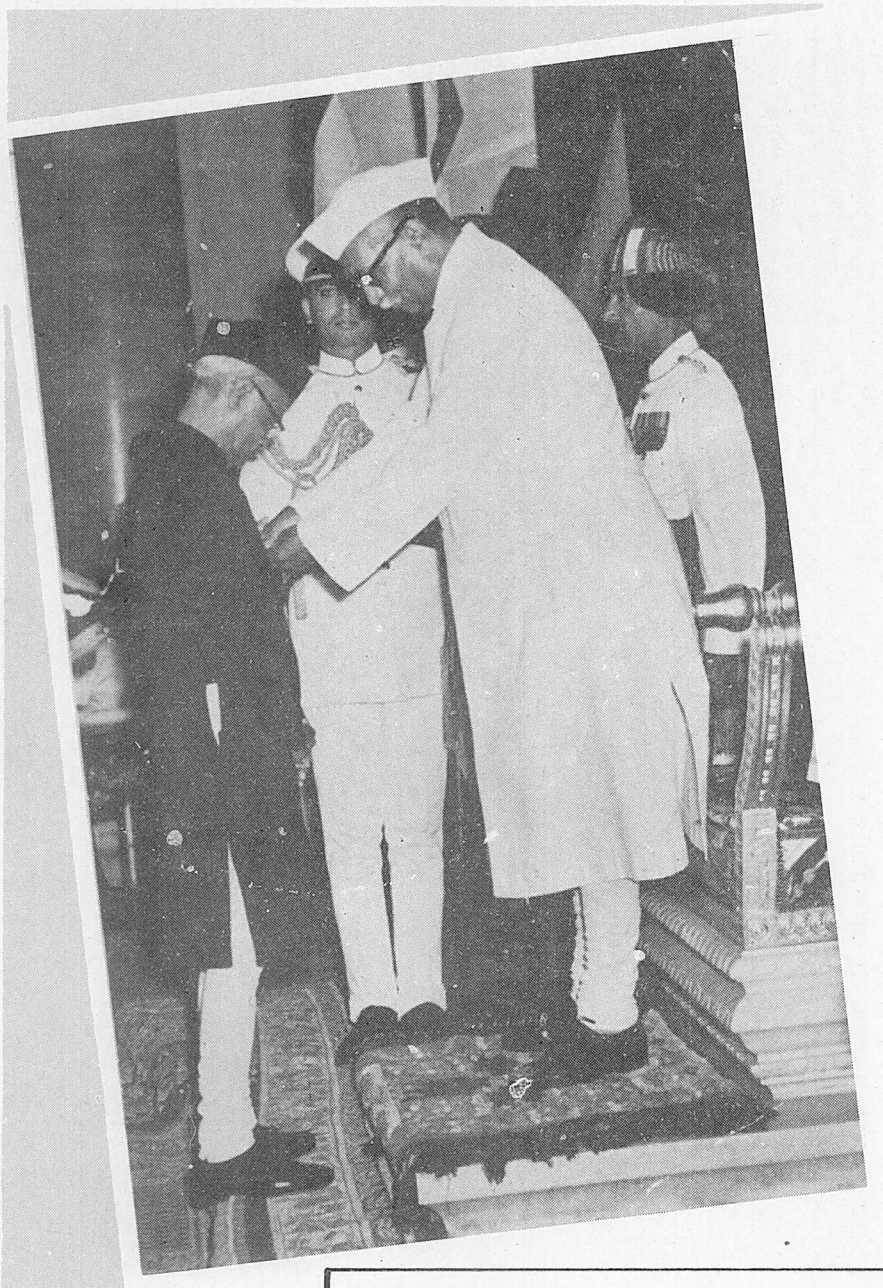

'पद्भूषण' सम्मान का स्वीकार करते हुए
राष्ट्रपति राजेंद्र प्रसाद के हाथों राष्ट्रपति भवनमें

वीतरागी आत्मगौरव की मुद्रा में ' पद्मभूषण ' सम्मान स्वीकारने के उपरान्त

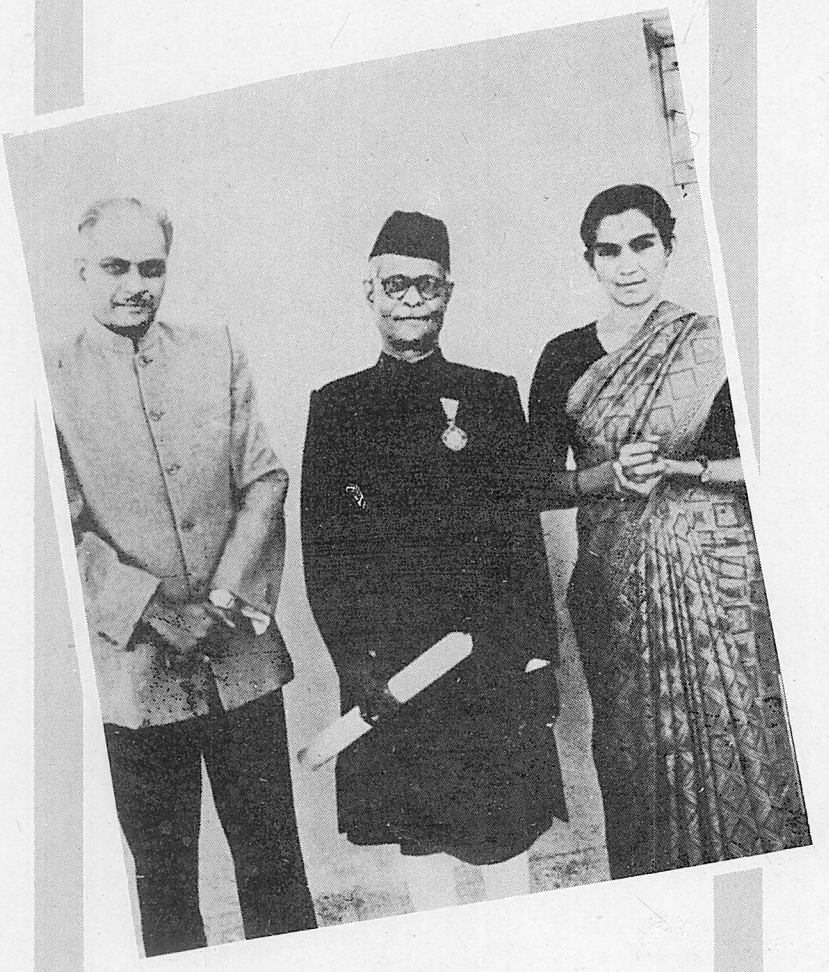

'**पद्मभूषण**' **सम्मान** प्राप्त करने के उपरान्त
सुहृद्वर श्री बैलूर एवं
श्रीमती बैलूर के द्वारा घरेलू स्वागत

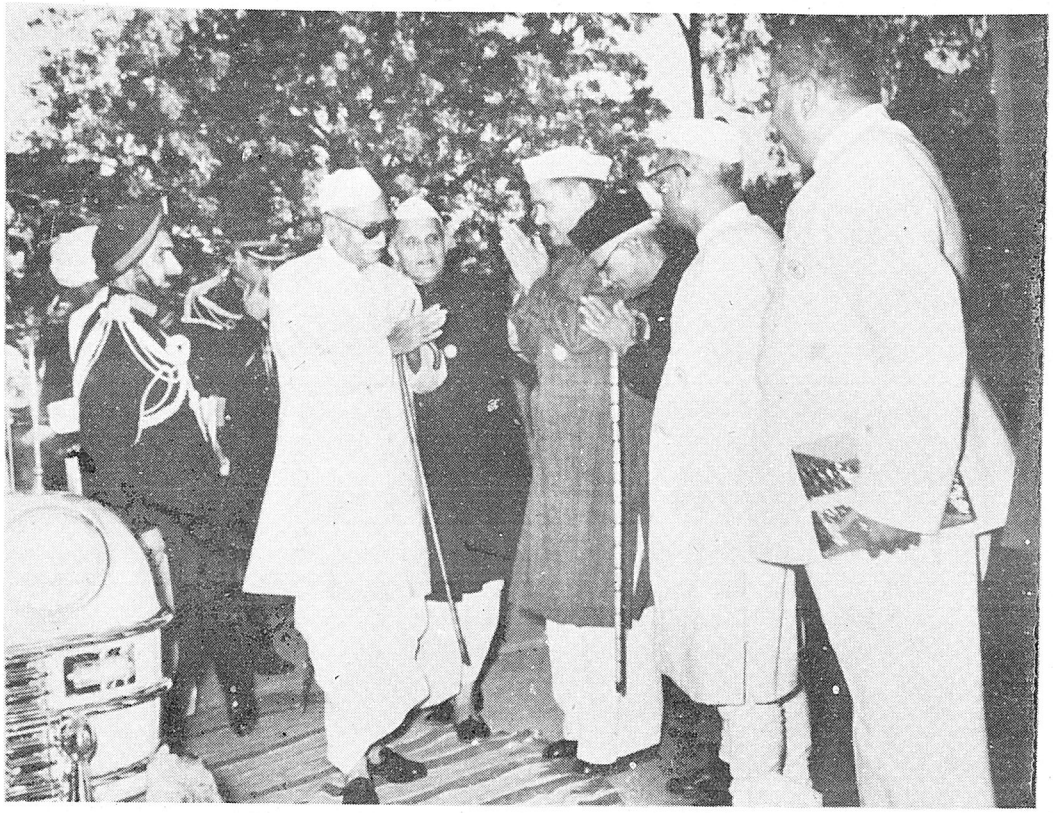

कालिदास समारोह, उज्जैन १९५८ खैरागढ़ विश्वविद्यालय द्वारा मंचित तथा पं. रातंजनकर द्वारा लिखित नाटक का दल राष्ट्रपति राजेंद्रप्रसाद, रातंजनकरजी के बाएं (विद्यमान राष्ट्रपति) डॉ. शंकरदयाल शर्मा, उपकुलपति पं. रातंजनकर के साथ

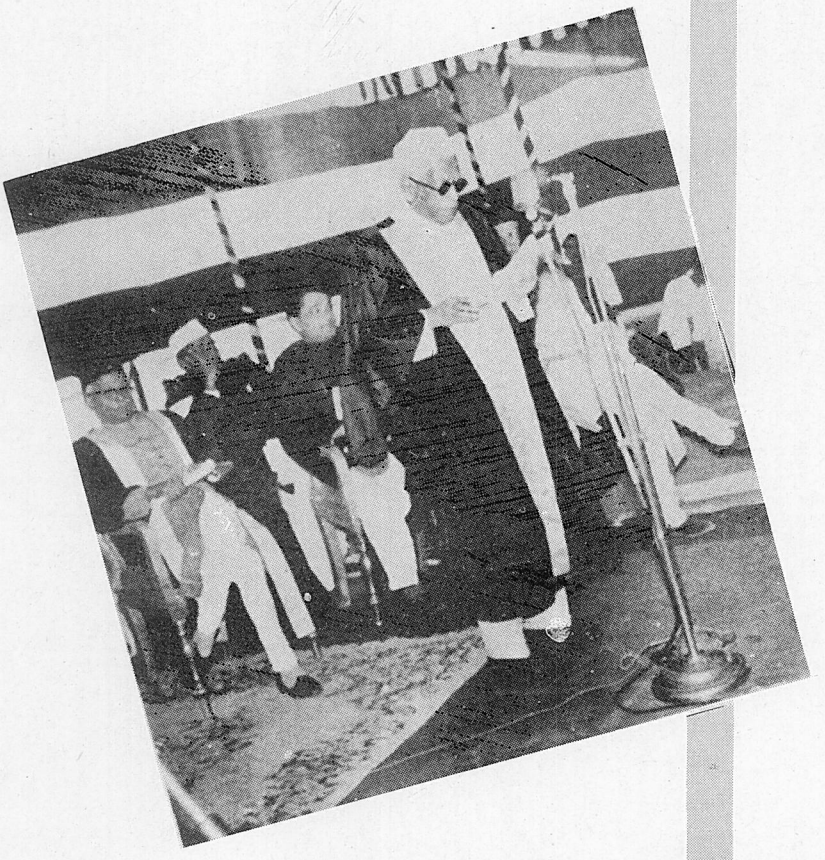

खैरागढ़ विश्वविद्यालय प्रथम प्रमाणपत्र वितरण (१९५९)
के अवसर पर भाषण देते हुए कुलपति (Chancellor)
डॉ. ह. वि. पाटसकर

Sitting on the chair (Left to Right) :
Dagar Brothers, Dr. S.N. Ratanjankar (V.C.), Ustad Vilayat Khan, Shri G.N. Natu, Smt. Rasoolan Bai, Smt. Siddheswari Devi.
Standing : Ustad Yunus Hussain Khan, Shri. K.G. Ginde, Shri A. Kanan, Prof. D.T.Joshi, Prof. V.G. Jog.
Sitting on the Floor :
Dr. (Smt.) S. Mutatkar, Smt. Malabika Kanan, Smt. Meera Banerjee, Smt. Lakshmi Shankar, Smt. Shanta Devi.

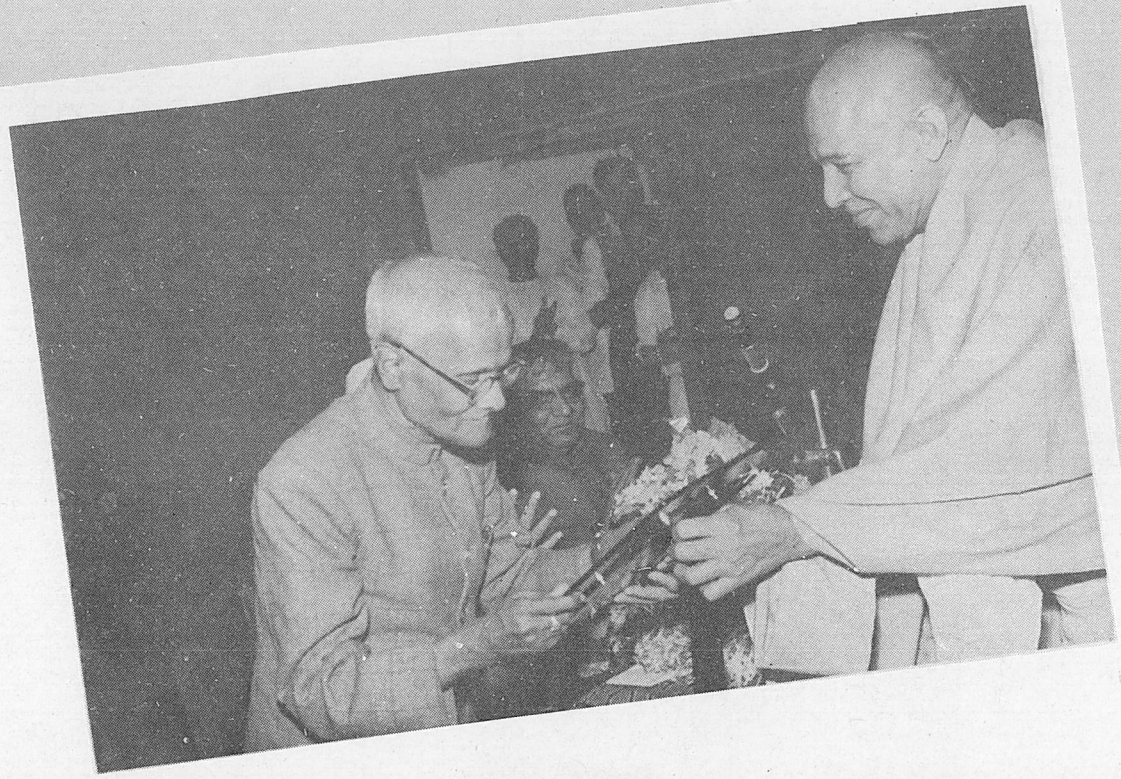

दिल्ली संगीत नाटक अकादमी की 'फेलोशिप' प्रदान हो जाने पर श्रीवल्लभ संगीतालय, बंबई में गुरुबंधु स्वामी श्रीवल्लभदास के हाथों अभिनंदन! (बीच में) श्री सी.पी. गोड़से (भूतपूर्व चैरिटी कमिशनर, महाराष्ट्र)

श्रीवल्लभ संगीतालय सायन, बंबई : १९६५
'नादवंदना' की ओर से उ. फैयाजहुसेनखां की
पुण्यतिथि में श्री सी. पी. गोड़से तस्वीर
को माल्यार्पण करते हुए

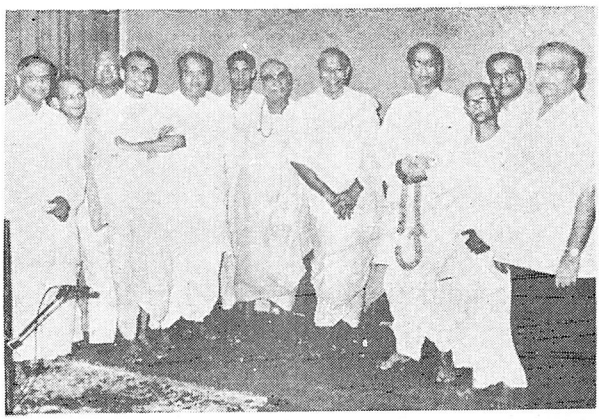

प्रधान अतिथि डॉ. बालकृष्ण केसकर का स्वागत

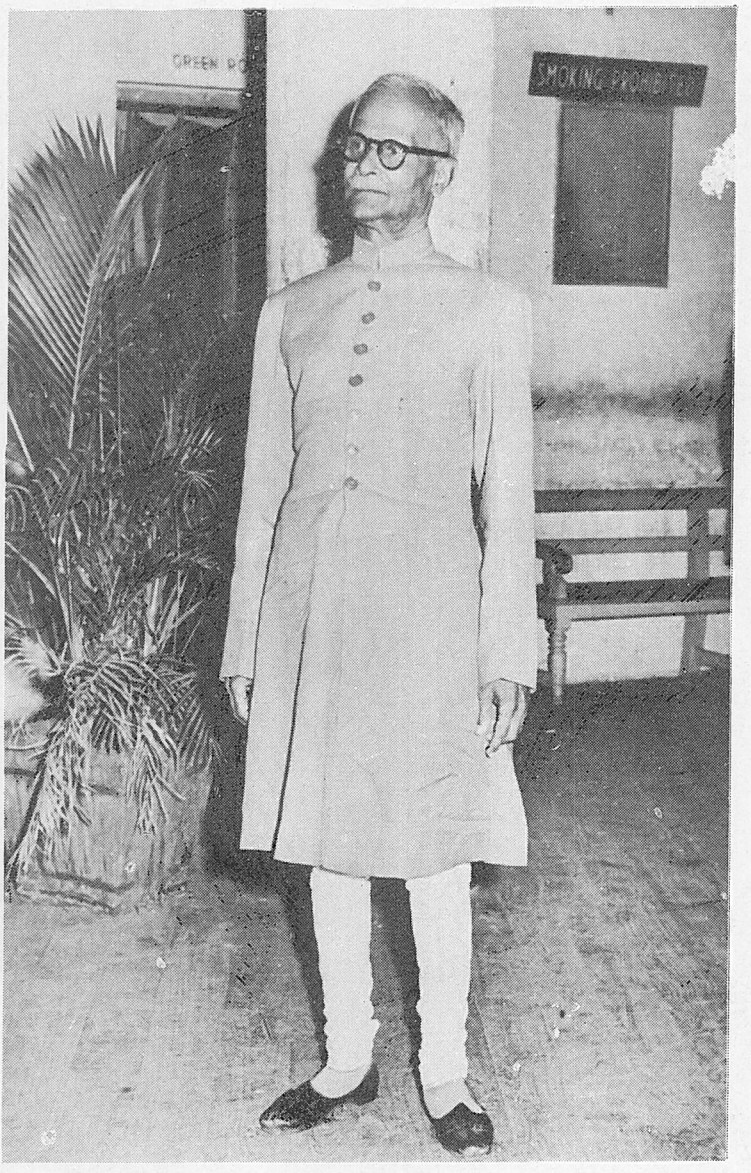

षष्ठिपूर्ति के अवसर पर पं. रातंजनकरजी

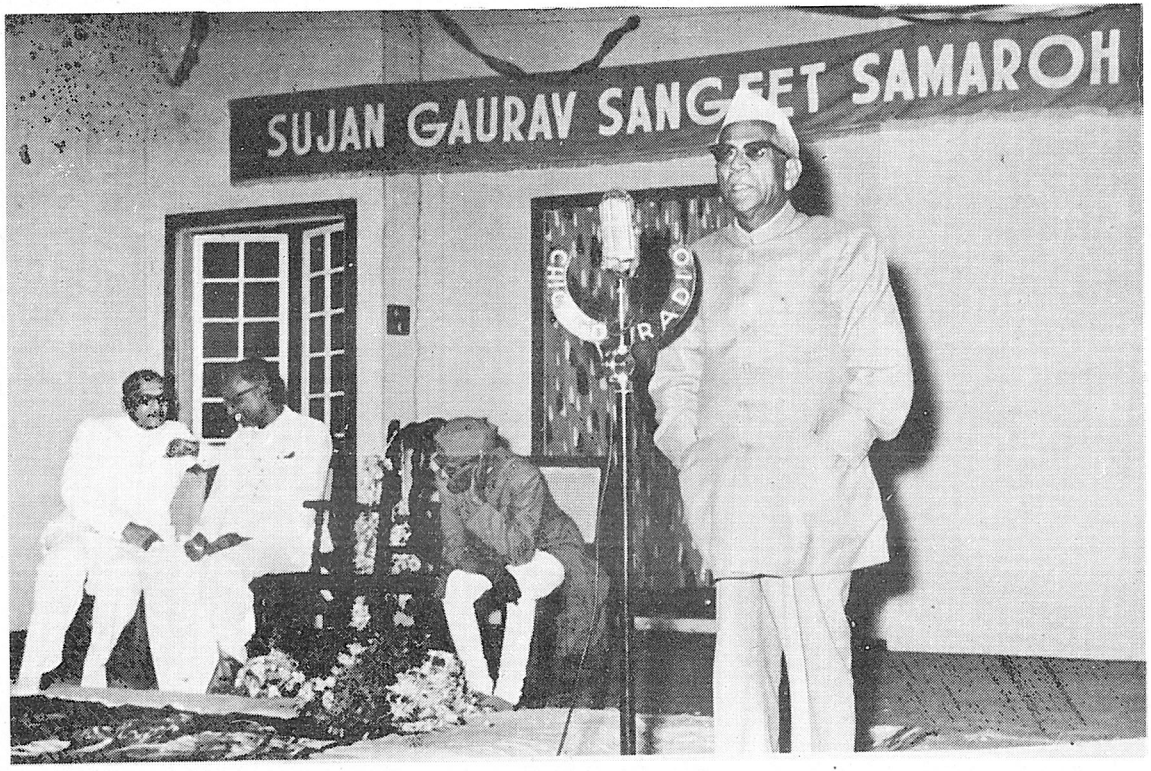

'**सुजान गौरव संगीत समारोह**' राज्यपाल मान्यवर पाटसकर भाषण देते हुए
बैठे हुए (बाएं से) न्यायमूर्ति गोखले, मा. केसकर तथा पंडितजी

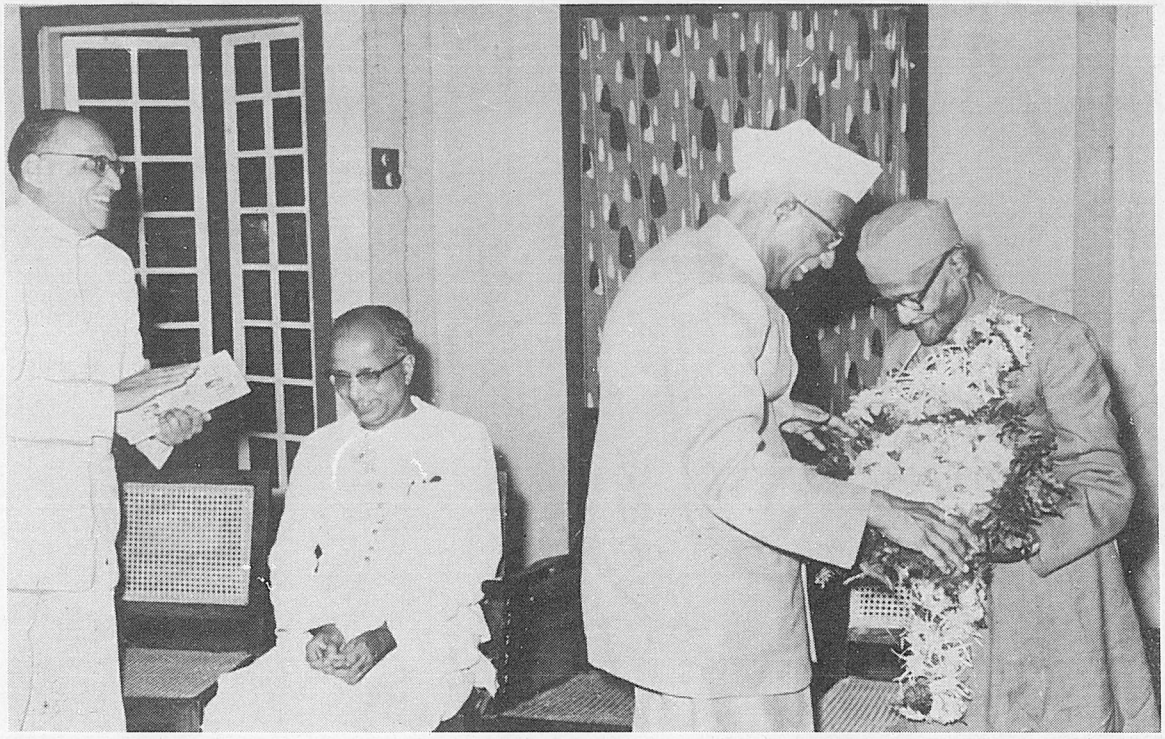

षष्टिपूर्ति समारोह के अवसर पर राज्यपाल पाटसकर जी के हाथों रातंजनकरजी का सम्मान

षष्ठिपूर्ति : उस्ताद विलायत हुसेनखां के हाथों पं. रातंजनकरजी का सम्मान

'सुजान' गौरव संगीत समारोह (१९६१) में गाते हुए किराना गायक पं. बेहरेबुवा; संवादिनी पर पी. मधुकर

'षष्ठिपूर्ति : सुजान संगीत समारोह' में गा रही है श्रीमती सिद्धेश्वरीदेवी अपनी सुपुत्री शांतादेवी के साथ

ऐसी बात जब एक बार मैंने उनसे की तो उन्होंने यमन की दो बंदिशें - जो उनकी स्वरचित हैं - ध्वनिमुद्रित की थीं। वह ध्वनिमुद्रण उनकी गायकी का एक अनुपम नमूना है ऐसा मैं मानता हूं ।

उन्हीं दिनों मैंने अखिल भारतीय संगीत के कार्यक्रम में उनके गाए हुए रामदासी मलार के बारे में उनसे पूछा। मैंने स्व. पिताजी से उस राग को जिस प्रकार सीखा था उससे वह काफी भिन्न था। इसलिए उसके स्वरूप को मैं समझना चाहता था। उन्होंने उस स्वरूप की जानकारी ही नहीं दी, बल्कि ' माधो मुकुंद ' बंदिश भी मुझे सिखाई तथा उसका स्वरलेखन अपने हस्ताक्षर में मुझे दिया ।

'तरल प्रबंधावली' की हस्तमुद्रित प्रति मैंने उनके अभिप्राय के लिए उन्हें भेजी थी। उस बारे में बहुत अच्छा अभिप्राय भेजकर उन्होंने मुझे प्रोत्साहित किया ।

उनकी 'अभिनव गीत मंजरी' में प्रकाशित रचनाएं उनके वाग्गेयकार के रूप में संगीत के लिए अत्यंत श्रेष्ठ योगदान है। उनकी रचनाओं का अध्ययन नई दिशा प्रदान करने में सहायभूत होगा। राग का सुंदर स्वरूप तथा विविध प्रकार की शब्दरचना इन दोनों का अपूर्व संगम उन बंदिशों में दिखाई देता है। ऐसे गुणी एवं विद्वान आचार्य को मैं नम्र भाव से प्रणाम करना चाहूंगा ।

–प्रो. नारायण विनायक पटवर्धन, बड़ौदा

संगीत के श्रेष्ठ एवं विद्वान् प्रोफेसर,
पं. विनायकबुवा के सुपुत्र एवं शिष्य
तथा गायक एवं गुरु

स्मृतियों के संचित पराग

गुरुदेव पं. श्रीकृष्ण नारायण रातंजनकरजी का लंबा-चौड़ा नाम जब मैंने बाल्यकाल में पहली बार सुना तो ऐसा लगा कि वे अपने नाम के अनुरूप लंबे-चौड़े डील डौलवाले होंगे। परंतु जब इनके प्रत्यक्ष दर्शन हुए तो उन्हें एक छोटा नाटा-सा व्यक्ति पाया। प्रारंभ में उनके कद से बड़ी निराशा हुई परंतु, मैरिस म्युझिक कालेज, लखनऊ में जब वहां के प्रत्येक विद्यार्थी, शिक्षक एवं कर्मचारी में उनके प्रति अगाध प्रेम एवं श्रद्धा देखी तो अपनी धारणा बदलनी पड़ी। धीरे धीरे यह बात समझ में आई कि इनके समान छोटे कदवाले और भी व्यक्ति हुए हैं, जैसे लालबहादुर शास्त्री, नैपोलियन आदि। वे अपने कार्यों से विशालकाय और महान् बन गए हैं ।

मुझे सन १९५४ में भारत सरकार की २५०/- प्रति माह की सांस्कृतिक छात्रवृत्ति संगीत की उच्च शिक्षा हेतु प्राप्त हुई थी। इसके अंतर्गत मैंने रातजंनकरजी से शिक्षा प्राप्त करना प्रारंभ किया। वे एक राग के प्राय: सभी उपलब्ध विलंबित एवं मध्यलय के ख्याल, ध्रुपद धमार, तराना आदि भी सिखाते थे। कुछ राग जैसे यमन, मालीगौरा, खट, बरवा, आदि तो कई बार सीखने को मिले। परंतु इनसे यह कहने की सामर्थ्य किसी भी विद्यार्थी में नहीं थी कि वह राग पहले सीखा जा चुका है ।

गुरुदेव मैरिस म्युझिक कॉलेज भवन के एक कमरे में तीस वर्ष तक अकेले ही रहे। वहाँ इनके परिवार में एक बिल्ली, बंदर तथा एक कुत्ता, रहता था। जो उनका मन बहलाते थे। इनकी देखरेख या तो इनके विद्यार्थी करते थे या फिर मातादीन या रामा नामक इनका भृत्य। वे बहुत ही नर्वस टेंपरामेंट के तथा भुलक्कड़ थे। इन कारणों से, घर बाहर सभी जगह इन्हें अपने साथ देखरेख के लिए, घर का व्यक्ति, विद्यार्थी अथवा भृत्य रखना ही पड़ता था। उनकी यात्राओं में उनके साथ चाय बनाने का सारा सामान एक लकड़ी की जालीदार पेटी में रहता था तथा फर्स्ट क्लास के डिब्बे में स्पिरिट लेंप पर चाय बनती थी। वे अपने सोफा पर तन्मय होकर काम करते रहते थे तथा कभी कभी बहुत देर तक मिलने के लिए आए हुए व्यक्ति को देख नहीं पाते थे। काम करते करते एकाएक इनका ध्यान सामने बैठे हुए व्यक्ति पर जाता था और वे मुस्कराकर इसका स्वागत करते थे। प्रतिउत्तर में दूसरे व्यक्ति को, उनकी मुस्कराहट का जवाब, फौरन मुस्कराहट से देना आवश्यक था। इसमें चूक होने पर उसे उनकी नाराजी सहनी पड़ सकती थी ।

गुरुदेव को विभिन्न भाषाएं सीखने और इनकी पुस्तकें पढ़ने का शौक था। उन्होंने कॉलेज के विद्यार्थियों से ही बंगला, सिंहली और उर्दू भी सीखी थी। वे अपने कार्यालय में कार्य करते रहते थे और ऐसे ही सटे हुए कक्ष में उनके विद्यार्थी अभ्यास भी करते रहते थे। वे अपने कार्यालय से ही बगल के कक्ष में चल रहे रियाज को भी सुनते रहते थे और रियाज में कोई त्रुटि अनुभव करने पर, काम छोड़ कर, सुधार करने पहुंच जाते थे, या फिर पर्ची लिखकर सुधार करने के आवश्यक निर्देश भेजते थे। ऐसी अनेक पर्चियाँ मैंने वर्षों तक गुरुप्रसाद समझ कर सहेजकर रखी हैं। उन्हें समय होनेपर वे तीन-चार घंटे भी सिखाते रहते थे। उन्होंने पाठ्यक्रम, समय या वर्ष की मर्यादा में रहकर कभी नहीं सिखाया। अतः वहांके किसी भी विद्यार्थी ने वहाँ की स्नातकोत्तर 'संगीत निपुण' परीक्षा चार या पाँच वर्ष के पहले नहीं दी ।

यह सर्वविदित है कि वे एक अप्रतिम वाग्गेयकार थे। उन्होंने मेरे गले में तान उत्पन्न करने के लिए, कई तान-अंग के मध्यम ख्याल जैसे यमन में 'करीम करतार', 'हंसध्वनि' में 'हे रिधसिद्धदायक गण नायक' की रचना की ।

अण्णासाहब की शिक्षा-विधि अत्यंत वैज्ञानिक परंतु साथ ही कलात्मक भी थी। वे सिखाते समय राग अथवा बंदिश के एक-एक पुर्जे को अलग करके सिखाते थे और बाद में उन्हें एकत्र कर एक सुड़ौल राग या बंदिश का रूप प्रदान करते थे। इस विधि से चलन की दृष्टि से कठिन लगनेवाले राग या बंदिशें भी आसानी से सीखी जाती थीं ।

आवाज या अभ्यास के प्रति लापरवाह रहने पर भी वे छोटी घरेलू बैठकों में तथा विशेषकर भातखण्डे पुण्यतिथि के बहत्तर घंटे के अखण्ड अनुष्ठान के अंत में इतना उच्च कोटि का श्रेष्ठ प्रदर्शन करते थे कि कई बार श्रोतागण भावविभोर होकर उन्हें घंटों सुनते रहते थे ।

गुरुदेव को जब इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय खैरागढ़ (म. प्र.) में प्रथम उपकुलपति बनाकर भेजा गया, उन्होंने वि. वि. कार्यालय के स्थापित होने तक महीनों टाइपिंग, डिस्पेच, रिसीट का भी लिपिकीय कार्य स्वयं ही किया। इस वि. वि. की आर्थिक स्थिति खराब होने पर उन्होंने लगभग डेढ़ वर्ष तक पूरा वेतन नहीं लिया अपने वेतन में से ५००/- प्रति माह कटाते रहे। बादमें श्री पी. एन. चिंचोरे ने इस संपूर्ण राशि को 'भातखण्डे स्मृति ग्रंथ' के प्रकाशन हेतु लगा दिया। गुरुदेव चाहे जितनी आर्थिक कठिनाई में रहे हों, परंतु उन्होंने किसीकी

कोई सहायता कभी स्वीकार नहीं की। उनके सान्निध्य में आए इनके शिष्यों ने, इनका ही खाया, नि:शुल्क सीखा और अपने भविष्य का निर्माण भी किया। ऐसे उदार, नि:स्वार्थ गुरु इस कलियुग में दुर्लभ हैं। हम सदैव उनके ऋणी रहेंगे ।

–डॉ. अमरेशचंद्र चौबे
इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़
गायन विभाग के प्रोफेसर एवं अध्यक्ष

"आए संत सुजान देत विद्या को दान"

गुरुवर्य स्वर्गीय पंडित श्रीकृष्ण नारायण रातंजनकरजी को अण्णासाहब अथवा केवल अण्णा से ही संबोधित किया जाता था। महाराष्ट्र से लेकर दक्षिण भारत तक बड़ा भाई एवं अपनेसे बड़ों को अधिकतर अण्णा ही कहा जाता है। स्वयं उनके वरिष्ठ बन्धु स्व. श्री दत्तात्रेय रातंजनकरजी और बड़ी बहन श्रीमती माणिकबाई उन्हें अण्णा कहते थे। अण्णा शब्द का विश्लेषण करें तो सही माने में इसका अर्थ पिता समान बड़ा, एक जिम्मेवार व्यक्ति एवं सारे कुटुंब को आधार देनेवाला व्यक्ति होता है। अण्णासाहब में ये तीनों विशेष गुण मौजूद थे। (१) इस शतक के उत्तरार्ध के सभी संगीतकारों एवं विद्वानों के वह बड़े भाई समान थे। (२) अपने गुरु पं. विष्णु नारायण भातखंडेजी के सांगीतिक कार्य को निष्ठापूर्वक आगे चलाने के वह जिम्मेवार थे और (३) अपने निजी कुटुंब-परिवार के साथ साथ अनगिनत शिष्य गणों के लिए वह एक आधारस्तंभ के समान थे।

अण्णासाहब के सान्निध्य में करीब आठ वर्ष अर्थात् लखनऊ मैरिस म्यूझिक कॉलेजवाले उन्हींके निवासस्थान पर रहने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उस समय मेरी आयु ग्यारह वर्ष की थी। अण्णासाहब का महान व्यक्तित्व एवं महत्ता को जानने की अथवा भांपने की न तो मुझमें बुद्धि थी न शक्ति। यों समझिए कि एक अज्ञानी बालक ज्ञान के अथाह समुद्र के तट पर खड़ा उस विशाल दृश्य को निहारता रहा, निरीक्षण करता रहा। आठ वर्ष उपरान्त जैसे जैसे समय बीतता गया, गुरूवर्य के सान्निध्य में उनके अगाध ज्ञान के प्रकाश से मेरा अंधकारमय अज्ञान दूर होने लगा और ज्ञान के किरण प्रज्वलित होने लगे, वैसे वैसे उस ज्ञान समुद्र की गहराई एवं विशालता केवल एक दृश्य नहीं रहकर उसमें स्थित गरिमा का मुझे अहसास होने लगा। वह एक सामान्य सहृदय व्यक्ति ही नहीं किन्तु ऋषि- समान हैं इसका मुझे परिचयात्मक अनुभव उनके संग में रहकर हुआ। इसमें मेरा काफी समय नष्ट हो चुका था परंन्तु उस महासागर से, आचमन के रूप में भी, जो पा सका, ग्रहण कर सका वह मेरे इस जन्म को सार्थक बनाने में सिद्ध हो सका है और भविष्य के लिए पर्याप्त है ऐसी मेरी पूर्ण धारणा एवं विश्वास है।

अण्णासाहब का संपूर्ण जीवन सांगीतिक रहा। मेरी दृष्टि से गुरूजी ने अपना सर्वस्व जीवनकाल, समय और आकाश का यथार्थ भावार्थ को संगीत में परिवर्तित कर समझाने के प्रयासमें ही बिताया। मेरे अनुभव में ऐसा कोई एक क्षण मुझे याद नहीं जब कि मैंने देखा हो कि अण्णासाहब निश्चिंत होकर, एकान्त में आराम कर रहे हों या किसी हमउम्र व्यक्ति से इधर उधर की गपशप कर रहे हों। स्वर, लय और साहित्य में मग्न मन को इतनी फुरसत कहा कि जीवन के अन्य विषयों पर ध्यान दे सकें। हर समय हाथ में हरे रंग की स्याहीवाला कलम और कागज़ या

कागज़ का टुकड़ा जिसपर जरासा भी कोरापन हो, मानसपटलपर उभरा हुआ स्वरांकन शीघ्र ही कागज पर स्वर-लिपिबद्ध करते समय हम उन्हें देखते थे अथवा सांगीतिक लेख, भाषण एवं पत्रलेखन में व्यस्त पाते थे। न खाने की चिन्ता न पीने की, जिन्दगी में केवल एक ही व्यसन को अपनाया और वह था पान और तमाखू। पढ़ने का शौक बहुत था। रात के दो ढ़ाई बजे तक पढ़ते थे। सांगीतिक विषयों के अतिरिक्त उन्हें अंग्रेजी जासूसी साहित्य अथवा विभिन्न भाषाओं की किताबों को पढ़कर भाषाएं सीखने का भी काफी शौक रहा। मराठी उनकी मातृभाषा रही परन्तु संस्कृत अंग्रेजी, हिन्दी, गुजराती भाषाओं में वे पारंगत थे एवं बंगाली, कन्नड़ तथा ब्रजभाषा, अवधी, भोजपुरी, बुन्देलखंडी इत्यादि भाषाओं में उनका अध्ययन और रुचि अत्यन्त तीव्र रही।

आयु के छब्बीसवें वर्ष की युवा अवस्था में ही प्राचार्यपद की जिम्मेवारी, परिवार से अलग रहकर छब्बीस वर्ष भातखंडे कॉलेज की एकनिष्ठ सेवा, नि:स्वार्थ मन से शिष्यों को नि:शुल्क विद्यादान करना और मार्गदर्शन देने में सम्पूर्ण आयुष्य लगाना यही उनके जीवन का एकमेव ध्येय और उद्देश्य रहा। इस कारण अण्णासाहब को अपना शारीरिक स्वास्थ्य और उससे जुड़ी अपनी लाजवाब गायन-कुशलता और अपनी आवाज (कण्ठ-स्वर) की सुरक्षितता पर कतई ध्यान नहीं रहा। दोपहर का भोजन दो या ढ़ाई बजे, रात्रि का भोजन दस या ग्यारह बजे, वह भी अत्यन्त निम्न मात्रा में। फिर इन दो भोजनों के बीच, चाय के अनगिनत दौरे चलते रहते थे। नतीजा यह हुआ कि उनकी हमेशा पेट की शिकायत (Gastirc condition) रही। गायक का स्वास्थ्य ठीक न रहे तो कण्ठ स्वर पर उसका बुरा असर पड़ना और उससे मानसिक तनाव इत्यादि होना स्वाभाविक है। गुरुजी का स्वभाव कुछ हठी किस्म का रहा। इसकारण जीते जी उन्होंने अपने हितचिन्तकों के कहने पर भी कभी भी डॉक्टरी इलाज नहीं किया। केवल अपने हठ से ही अपने को स्वस्थ समझते रहे, दिन दूना रात चौगुना कार्य करते रहे। उनको रेलगाड़ी की यात्रा बहुत पसन्द थी। परीक्षक के नाते और रेडियो के ऑडिशन के चक्कर में उन्होंने हिन्दुस्तान का ऐसा कोई भी कोना बाकी नहीं रखा जहाँ रेलगाड़ी जाती हो और गुरुजी वहाँ नहीं गये हों। भरपूर सामान (luggage) के साथ प्रवास करने में आनन्द लेते थे। साथ में एक शिष्य अथवा कोई न कोई व्यक्ति जरूर रखते थे। कई लेख-लेखन एवं रागों में बन्दिशों की रचनाओं की स्फूर्ति का स्रोत रेल सफर ही रहा यह कहें, तो इसमें अतिशयोक्ति नहीं होगी। वख्त बेवख्त खाना, पीना, सोना इन सब बदपरहेजियों के कारण बदन में कमजोरी कायम रही। उसका परिणाम, सिखाते समय अथवा छोटी महफिलों में, आपस के लोगों में एवं शिष्यगणों में उस अभाव को नजर अंदाज किया जाता रहा और अण्णासाहब के बहुमूल्य गुणमान की ओर सभी का ध्यान केन्द्रित होता था और आकर्षक लगता था। परन्तु आम श्रोता एवं आधुनिक तकनीकी साधन (माइक, लाऊड स्पीकर इत्यादि) कंठ की मधुरता के साथ साथ दोषों को भी समान दृष्टि से स्वीकार कर फैलाता है, और वही उसका कार्य है। ऐसी स्थिति में आवाज में खर्राश बारबार आने से श्रोताओं के साथ कलाकार स्वयं बेचैन और अधीर हो जाता है और उसका परिणाम उसकी कला के स्तर पर पड़ना स्वाभाविक है। ठीक यही प्रकार गुरुजी के १९५० के बादवाले कार्यक्रमों में होने लगा, जिसके कारण इस शतक के उत्तरार्धवाले संगीत श्रोताओं को अण्णासाहब का उच्च कोटि का अलौकिक गायन, गुणज्ञान और मधुरता से भरा, सुनने का लाभ नहीं मिला। संगीतकला में उनकी आंतरिक दृष्टि का परिचय सही मानो में नहीं हो सका। खैर, इस दिशा में वह स्वयं निश्चिन्त थे। क्योंकि

गायनकला के वे उपासक थे। इसके द्वारा नाम, ख्याति और वैभव की अपेक्षा से वह सदा वंचित रहे। कार्यक्रमों के द्वारा जो भी धनलाभ होता था वह सर्वस्व रूप में भातखंडे कॉलेज लखनऊ को भेंट-अर्पण करते थे। केवल रेडियो एवं परीक्षक के नाते जो शुल्क मिलता था उसको वह स्वयं स्वीकार कर लिया करते थे, वह भी हम जैसे शिष्यगणों के आग्रह पर। वह निरंतर संगीत की सेवा में कर्मठ संन्यासी का जीवन व्यतीत करते रहे।

अण्णासाहब रियाजी गायक नहीं थे परन्तु गाते समय ऐसा महसूस होता था कि हर राग उनका गुलाम है, रागों के शुद्ध रूपों का रहस्य और उनका सौंदर्य इतनी सहजता से प्रस्तुत करते थे कि मानो सुननेवालों को राग हस्तगत हो जाता था। गुरुजी के साथ गायन में तानपूरे की साथ संगत से मुझे और अन्य शिष्यों को जो उनके निकट सम्पर्क में रहे बहुत कुछ सीखने को मिला। नाद सागर को पार करने की, शक्ति और युक्ति को गायनद्वारा ज्ञानानुभव कराने की प्रबल क्षमता उनमें थी। 'राग' केवल स्वरों के आरोही-अवरोहीकरण की उथलपुथल से नहीं परन्तु रागांग वाक्यों से एवं श्रुतिप्रमाण स्वरों के नियमित आन्दोलनों पर नियन्त्रण रखते हुए सही उच्चारण से उजागर होता है, इस रहस्य का ज्ञान सर्वप्रथम अण्णासाहब से ही हम सबको प्राप्त हुआ। मैंने अच्छे से अच्छे भूतपूर्व तथा आधुनिक काल के कलाकारों को सुना परन्तु उन सबमें ऊपर बताए राग के मूल सिद्धांतों का अभाव पाया। रियाज़ी होने के कारण प्रस्तुतिकरण में दम खम रहा किन्तु राग को अपने अस्तित्व की छाप निखर नहीं पाती थी। फिर बन्दिशों के सहारे अथवा तय्यार सट्टे की तानों के जरिये अल्पज्ञानी श्रोताओं की तालियों से प्रभावित होकर उस्ताद और पंडित का तखल्लुस जोड़कर भले ही नाम और शोहरत हासिल कर लें पर राग उनसे कोसों दूर है, ऐसा जान पड़ता था।

अण्णासाहब का स्वभाव उपरसे जितना तीखा लगता था उतना ही उनका हृदय अंदर से कोमल था। हर सत्यवादी, स्पष्टवादी व्यक्ति का बाह्य रूप उसी प्रकार का होता है यह एक अनुभवित सत्य है। ऐसे व्यक्तियों से पहली बार मुलाकात का कटु अनुभव होना भी स्वाभाविक है। परन्तु जैसे जैसे निकटतम सम्पर्क होता जाएगा वैसे वैसे उन व्यक्तियों कि दैवी गुणों के अनुभव भी आप कर पाएंगे। अण्णासाहब की गणना मैं उन व्यक्तियों में करना उचित समझता हूँ। बचपन से ही गुरुजी से मैं कुछ डरा डरा-सा रहता था। संगीत के संदर्भ में कुछ शंकाओं के प्रश्न उनके सम्मुख रखकर समाधान के दो शब्दों की अपेक्षा रखता रहा परन्तु साहस नहीं हुआ। १९६० से गुरुजी का दिल्ली कई बार आना हुआ और उनका निवास स्थान मेरा ही गरीबखाना रहा। उस समय मैं कुछ साहस जुटा पाया और उन्होंने मेरे हर प्रश्न के उत्तर बड़े ही प्रेमभाव से हल किए और प्रात्यक्षिक उदाहरण देते हुए मुझे समझाए। और उसके बाद १९७१ में मेरा बम्बई आना हुआ और डेढ़ दो वर्ष उनके निवासस्थान पर 'हिल व्यू, राघवजी रोड' उनके दर्शनार्थ मैं प्रात: जाया करता था। उस समय मेरे अनुभव में आया कि गुरुजी के स्वभाव में काफी अंतर आया है। उन्होंने तत्कालीन पार्श्व-आवरण से मुक्त होकर समय की वास्तविकता को समझकर स्वीकारा है। वह दिल खोलकर मुझसे समसमान की दृष्टि रखते हुए बहुत कुछ कहना चाह रहे हैं और यह रवैया कई दिनों तक रहा। बातचीत के दौरान मेरी कई सांगीतिक समस्याओं के संतोषजनक उत्तर मुझे मिले जिन्हें मैं आजन्म याद रख पाऊं तो यह मेरा सौभाग्य समझूंगा। केवल सांगीतिक विषय पर नहीं पर अध्यात्मिक विषयोंपर गुरुजी के चिंतन के अवशेष मुझे जाननेको मिले और उन विचारधाराओंका विस्मय होनेसे पूर्व मैं, अपनी बन्दिशों में उन विचारों को गठित करने की कोशिश कर पाया हूं। उसका एक उदाहरण इस भक्तिपरक रचना

का प्रयत्नमात्र है :-

सारा जग लूटा, साईं नाहीं लूटा।
हाथ लागा सब टोटा ही टोटा।।सारा.।।
साईं गुन जपमें, भरा है नफा नफा।
नाहीं लागे दौलत नाहीं होवे घाटा।।सारा.।।
चाहे साईं कहलो, चाहे ईसा कह लो।
चाहे श्याम कहलो जाए एक खाता।।सारा.।।
चाहे राम कहलो, रहीम चाहे कह लो।
चाहे जो भी कह लो पर एक नाता।।सारा.।।
देख्या 'दिनरंग', लहू रंग जीव एका।
वही रंग करता, वही रंग दाता।।सारा.।।

इस भक्तिपद की रचना की स्फूर्ति अथवा स्रोत मेरे और गुरुजी के बीच गपशप के बाद जो प्रेरणा मिली उसका फल है।

युगपुरुष अण्णासाहब के निधन के पश्चात् कुछ समय बाद मुझे राग 'जोग' गाने की मन में उत्कण्ठा पैदा हुई। परन्तु गुरुजी भी इस राग को कभी गाए नहीं थे और इसमें कोई बन्दिश भी मुझे याद नहीं थी। तालीम बगैर और गुरुजी के मुख से सुने बिना इस अछोप राग को गाना भी मैंने ठीक नहीं समझा। परन्तु मेरे मन की पुकार गुरुजी ने सुन ली। एक रात, मध्यरात्रि के दो बजे अण्णासाहब मेरे स्वप्न में आए और राग 'जोग' का सम्पूर्ण ज्ञान देकर लुप्त हुए। मेरी नींद टूटी और मैंने अपने को अत्यन्त आनन्दमय वातावरण में पाया। उस समय प्रात: चार बजे थे। मैंने तुरन्त तानपूरा उठाया और जो भी स्मरण था, रियाज करना आरम्भ किया। करीब एक घंटे तक आलाप करने के बाद जो पंक्तियां सूझीं (मानो कोई Prompt कर रहा हो) गाने लगा :-

"आए संत सुजान, देत विद्याको दान,
भनकत मेरे कान, सुपने में आन"

इस पंक्ति को स्थायी का रूप देकर एक घंटाभर गाकर, फिर मैं दुबारा सो गया। रात को रियाज के समय फिर एक बार इसी पंक्ति को गाया और तुरन्त अन्तरे के बोलों ने जन्म लिया :-

"कित बड़ भाग, जागे सबनके,
ज्यों प्रसाद पाए, 'दिनरंग' सुजनसों आज।"

और सचमुच गुरु प्रसाद समझकर मैंने जहां जहां भी यह राग और यह बन्दिश गाई वह महफिल कामयाब और यशस्वी रही। ऐसे महापुरुष हर समय स्वर्ग से उतरकर मेरे स्वप्न में आते रहें और मेरे अज्ञान को मार्गदर्शन देकर दूर करते रहें यह मेरी इच्छा ईश्वर से प्रकट कर, अण्णासाहब के प्रति यह मेरा आत्मचिन्तन समाप्त करता हूं।

—पं. दिनकर कायकिणी
—आचार्य रातंजनकरजी के चुनिंदा शिष्यों में एक।
श्रेष्ठ गायक, रचनाकार एवं गुरु।
संप्रति बंबई के 'संगीत तथा नर्तन शिक्षा पीठ' के मानद निदेशक।

समदर्शिता

स्व. अण्णासाहब से मेरी पहली मुलाकात इलाहाबाद रेड़ियो के उद्घाटन के तुरंत बाद ही हुई थी । मेरे रेडियो के ग्रेडेशन में 'अण्णासाहब' और पं. विनायकराव पटवर्धनजी ही थे । उन दिनों सामने बैठकर प्रदर्शन और ग्रेडेशन किया जाता था । इस मुलाकात के बाद बरसाहाबरस मैं लखनऊ आता रहा और हमेशा उनसे संपर्क बना रहा ।

दिल्ली के एक जलसे में उस्ताद फैयाजखां के साथ मुझे तबला-संगति का अवसर मिला था । उनके पीछे तानपूरे पर 'अण्णासाहब' थे । कार्यक्रम के अंत में खांसाहब ने तो मुझे तारीफ से नवाजा ही परंतु 'अण्णासाहब' ने मुझे प्रशंसा के जो दो शब्द कहे वे मेरे लिये बड़े प्रोत्साहन की बात थी क्योंकि वे जल्दी किसीकी तारीफ नहीं करते थे ।

'अण्णासाहब' एक बहुआयामी व्यक्तित्व के अनन्य संगीत-सेवी रहे हैं । एक रचनाकार, एक गायक, एक अनुशासनप्रिय प्रधानाचार्य, एक प्रबुद्ध एवं विचारवान लेखक, एक सहज और सहृदय शिक्षक के रूप में वे हम सबको हमेशा याद रहेंगे

— डॉ. लालजी श्रीवास्तव
डाइरेक्टर, प्रयाग संगीत समिति, इलाहाबाद

गान-कौशल, भाषाप्रेम तथा दार्शनिक-सा स्थिरमतित्व

मेरे व्यवसाय के कारण सन १९५७ के अप्रैल से १९६४ के अप्रैल तक मुझे लखनऊ रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । हिंदुस्थानी संगीत का आकर्षण होने के कारण उस काल के अंतर्गत मैं भातखंडे संगीत विद्यापीठ से संगीत की शिक्षा ग्रहण कर रहा था । उसी समय सन १९५९ के दिसंबर माह में श्रद्धेय गुरुदेव पं. श्रीकृष्ण रातंजनकर ऊर्फ अण्णासाहब से परिचय हुआ । पंडितजी उस समय परीक्षक के रूप में खैरागढ़ से लखनऊ पधारे थे । परीक्षाएं समाप्त होने के पश्चात् रात को साढ़े आठ बजे से लेकर साढ़े बारह बजे तक भातखंडे संगीत विद्यापीठ की ओर से विद्यापीठ के संग्रह के लिए अण्णासाहब के रेकॉर्डिंग करने का कार्यक्रम निश्चित किया गया था, जिसके लिए मुझे तानपूरा बजाने की आज्ञा हुई थी । रेकॉर्डिंग के समय एक बंद कमरे में तानपूरे पर मैं और मेरे एक कक्ष-साथी तबले पर श्री रामकुमार शर्मा, रेकॉर्डिस्ट श्री बेनीमाधव त्रिपाठी और स्वयं गुरुदेव अण्णासाहब को मिलाकर पांच व्यक्ति उपस्थित थे । यह कार्यक्रम लगातार आठ दिन तक चलता रहा । अण्णासाहब हर रोज रेकॉर्डिंग के दस मिनट पूर्व उपस्थित रहते थे । कमरे में आने के बाद अण्णासाहब श्री त्रिपाठीजी से पूछते थे - "हां, कहिए, आज मुझे क्या गाना है?" श्री त्रिपाठी अण्णासाहब को सिर्फ उसी समय बताते थे कि उन्हें फलाने रागों की रेकॉर्डिंग करनी है । पूर्व सूचना के बगैर इस प्रकार रेकॉर्डिंग के लिए रोज आठ दिन तक गाना मेरे विचार से केवल अण्णासाहब की योग्यता के लिए ही संभव होगा ।

सन १९६५ के दिसंबर महीने के दरमियान सौभाग्यवश मुझे आदरणीय अण्णासाहब के साथ बंगलूर, मद्रास, नई दिल्ली, लखनऊ और खैरागढ़ जाने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ। एक दिन बंगलूर में गुरुवर्य अण्णासाहब को कन्नड़ सीखने की इच्छा हुई। उन्होंने मुझे 'चंदामामा' का

एक कन्नड़ और एक मराठी अंक खरीद कर लाने के लिए कहा। बाद में उन्होंने कुछ ही घंटों में कन्नड़ लिपि को समझ लिया और तत्पश्चात् चंदामामा के दोनों अंकों के आधार पर केवल एक दिन में कन्नड़ भाषा सीख ली। बंगलूर से मद्रास की यात्रा के दौरान उन्होंने कन्नड़ भाषा में तीन कहानियों की किताबें पढ़ लीं।

सन १९७४ के अप्रैल महीने की बात है, जब गुरुवर्य अण्णासाहब डोंबिवली में मेरे निवास-स्थान पर चार दिन के लिए रहने आए थे। एक दिन शाम को किसी अन्य विषय पर बातचीत के दौरान एकदम-सा उन्होंने मुझे कुछ लिखने के लिए कहा। कुछ ही पलों में उन्होंने बिना गाए स्वरलिपि के रूप में झपताल की एक बंदिश लिखवाई और मुझे गाने को कहा। बंदिश गाने के बाद मैंने कुतूहल के नाते झिझकते हुए गुरुवर्य अण्णासाहब से पूछा कि यह कुछ तीव्र मध्यम की दुर्गा के समान दिखाई देता है। तब मुस्कुराते हुए उन्होंने कहा - "हां, ऐसा ही कुछ समझो और इसीलिए उसे 'हिमनंदिनी' या 'श्यामली' (हिमालय की पुत्री याने दुर्गा का दूसरा स्वरूप) कहना ठीक होगा। आश्चर्य की बात तो यह कि मेरे साथ किसी अन्य विषय पर बातचीत करते समय उनके मन में उसी समय नए राग और बंदिश की निर्मिति के विचार चल रहे थे। तो इस प्रकार श्रद्धेय अण्णासाहब 'चतुर पंडित' के 'चतुर शिष्य' ही कहने योग्य हैं।

अत: सन १९५९ से १९७४ तक (उनके अंतकाल तक) उनके सान्निध्य में रहकर उनके सांगीतिक और आध्यात्मिक विचार, कलात्मक दृष्टिकोण और रचनात्मक कार्य-कलापों को अंतरंग रूप से जानने और समझने का अवसर मुझे प्राप्त हुआ। सेवा तथा परिश्रम करते हुए यश की कामना से दूर रह कर सुख अथवा दु:ख दोनों में ही समभाव से रहना- उनके जीवन का एक ध्येय और आदर्श था, जिसका प्रमाण मुझे उनके सान्निध्य में रहकर प्राप्त हुआ।

बंदिश के माध्यम से वे अपने आपको कभी कभी उपदेशात्मक बातें कहते थे जिसका एक उदाहरण राग जैतकल्याण में उनकी एक रचना (लक्षण-गीत) द्वारा दिया जा सकता है। झपताल में इस बंदिश के बोल हैं - 'मनको निग्रहित जैते होवे कल्याण, पांचों किये शुद्ध 'स'- 'प' वाद संवाद।' सर्वसाधारण अर्थ से इस बंदिश द्वारा राग जैत कल्याण के लक्षण बताए गए हैं, जैसे कि मध्यम और निषाद वर्जित करके 'सारीगधसां' इस प्रकार के आरोह-अवरोह में जब षड्ज-पंचम वादी-संवादी होगा तब वह जैत कल्याण का स्वरूप धारण करेगा। परंतु सूक्ष्म आध्यात्मिक तत्त्वज्ञान की दृष्टि से अण्णासाहब ने इसमें मनुष्य के जीवन का सारांश बताया है। आध्यात्मिक दृष्टि से उनको कहना है कि मन को निग्रहित करने से कल्याण होगा, और पांचों इंद्रियों को शुद्ध करने से स्वरूप ('स') और परमेश्वर ('प') में संवाद होगा। उसी प्रकार पूरी संगीत-साधना का तत्त्व आपने स्वकृत राग सुरंजनी की एक बंदिश में निचोड़ दिया है, जिसके बोल हैं–

सुरन बीच सोहे प्रथम खरज,
रागन बीच भैरव राग प्रथम,
ध्रुपद सोहे सबहुं गीतन मों।
खरज साधे, साधे कंठ स्वर,
साधे भैरव, राग साधे सब,
गीत साधे, ध्रुपद साधनसों॥

ऐसे कर्मठ नि:स्वार्थ कला-योगी का चिंतनशील जीवन तथा उदात्त कर्तव्य एवं संकल्पों का समन्वय राग भैरवी में उनकी एक रचना द्वारा प्रतिबिंबित होता है जिसके शब्द इस प्रकार हैं -

बिन करतब कस जीवन तेरो,
नरतन अमोल पायो जगमों,
कुछ कर काज 'सुजन' उपजु गत।
शुद्ध चरित रखि निरमल तन मन,
कीजो दु:खित कष्ट निवारण
देश समाज बिबुध जन सेवा,
कर सारथक मनुख जीवन नित॥

– श्री वाय.एम. महाले, बंबई
भातखंडे कॉलेज के स्नातक,
आ. रातंजनकरजी के काफी निकट रहे।

अविस्मरणीय गान-कौशल और व्यक्तिविशिष्टता

संस्मरण-१

नवीन प्रयोग का एक उदाहरण प्रस्तुत है :- भातखंडे जयंती के पावन अवसर पर अण्णासाहब को एक जुगलबंदी कार्यक्रम का विचार आया। उनका आदेश हुआ कि स्व. सखावत हुसैन खांसाहब का सरोदवादन, उनके साथ, उनके पट्टशिष्य स्व. रसिकबिहारीलाल द्वारा हो तथा तबले की संगत स्व. पं. सखारामजी एवं उस्ताद मुन्नेखां साहब के पट्टशिष्य डी.पी. जौहरी द्वारा प्रस्तुत की जाए। मैंने १९६० में तबला-विशारद की उपाधि ग्रहण की ही थी कि अगले वर्ष यह कार्यक्रम निर्धारित हुआ। मेरी परीक्षा अण्णासाहब स्वयम् सुन चुके थे। अपनी युवा अवस्था में इस आदेश को सुनकर मैं नाड़ी-हीन हो गया। वे मुझे निर्जीव अवस्था में देखकर बोले, "वैज्ञानिक, क्या हुआ?" मैंने कहा "सर, मैं तो उस्ताद मुन्नेखाँ का शिष्य हूं, पंडित सखारामजी के साथ बैठना मेरे लिए उचित नहीं प्रतीत होता। अण्णासाहब ने तुरंत मेरी पीठ पर हाथ रखकर स्नेहपूर्वक कहा, "तुम तो वैज्ञानिक हो, तुम्हें संकोच क्यों है?" मैंने कहा, "संकोच का कारण पं. सखारामजी के साथ, तबला बजाने में है। मैं इतने प्रतिष्ठित गुरु के साथ बैठकर तबला बजाना उनका अपमान करना समझता हूं।" मुझे पुन: रोककर अण्णासाहब ने कहा, "गुरु का स्थान केवल गंडा बंधाने से ही नहीं होता, पंडितजी तुम्हारे गुरु के समान हैं। तुम इस महाविद्यालय के छात्र रहे हो, क्या हर्ज है? जाओ, आज्ञा लो और बजाओ।" उनका वह उत्साहवर्धक आदेश मुझे आजतक स्मरण है। कार्यक्रम के अंत में अण्णासाहब एवं उस्ताद सखावत हुसेनखां साहब तथा पं. सखारामजी ने स्नेहमय आशीर्वाद दिया। अण्णासाहब ने भी पुन: कहा- "हो न वैज्ञानिक!"

संस्मरण-२

अण्णासाहब के गायन में राग की आकृति एवं प्रकृति दोनों ही का समन्वय होता था। कभी-कभी वे बड़े मूड़ में आ जाते थे। भातखंडे जयंती के अवसर पर कार्यक्रम का समापन उन्हीं के द्वारा हुआ करता था। मुझे वे 'साइंटिस्ट' के नाम से संबोधित करते थे। मंच पर बैठकर पहले पहल वे श्रोताओं को देख लेते थे। उनको यह जानने में देर नहीं लगती थी कि श्रोताओं का क्या स्तर है। स्वर में मिली हुई तानपूरों की जोड़ी को वे फाइनल टच बड़े प्रेम से देते थे। संगीतकारों को स्नेहमयी मुस्कराहट से स्वागत करते हुए अपनी तर्जनी उंगली से संकेत देते थे अर्थात् जिसको संकेत किया उसका आशय उस व्यक्ति से होता था जो उनके साथ संगत करेगा। हम सब लोगों को उनके संकेत की प्रतीक्षा रहती थी जैसे कोई लाटरी निकलनेवाली हो। छात्रों में मैं ही भाग्यशाली था जिसे वे तबले पर बुलाते थे। रचना 'भवानी-दयानी' का गायन उनके द्वारा एक अनूठी छबि लिये रहता था। झपताल में निबद्ध यह रचना सभी को बड़ी प्रिय थी। मैं तबले पर था। गाते गाते झपताल के मध्य-लय में मैंने ताल की दसवीं मात्रा के अक्षर 'ना' पर बल दे दिया। अण्णासाहब एकदम 'अलर्ट' हो गए। मुझे देखा, मुस्करा दिए। बस फिर क्या था! प्रकार-प्रकार के अनागत के रूप प्रस्तुत कर दिए उन्होंने। थोड़ा-सा भी लयकारी का प्रदर्शन कर दीजिए और फिर देखिये उनके द्वारा उसका गायन में व्यवहार। इस प्रयोग-उपयोग का व्यवहार हम सब में रोमांचकारी प्रेरणा जाग्रत कर देता था। शिक्षक-गणों एवं विद्यार्थियों में इस उत्तेजन का बड़ा ही अनुकूल प्रभाव पड़ता था। दूसरे ही दिन से हम सबको गुण-ग्रहण एवं अभ्यास की लौ लग जाती थी। बड़े ख्याल की रचनाओं में अंतिम एक या दो मात्राओं में तैयारी से बोलों की तबले पर कुशलता एवम् कर्णप्रियता में व्यवहार करने पर सम दिखाने को वे अधिक सराहते थे, शब्दोच्चारण होता था "वाह! क्या बात!" अंतिम मात्राओं पर झपटके तान लेकर सम पर आना उनके द्वारा बड़ा प्रिय एवम् मनोभावन प्रतीत होता था।

एक बार बड़े ख्याल एक ताल में मैंने अंतिम मात्रा पर धीरे से 'तीन धा' लगाकर उन्हें संबोधित किया। अब तो रंग आ गया। मुस्कुराते हुये इस 'तीन धा' के, रचना के शब्दों द्वारा अनेक रूप, प्रस्तुत कर दिए उन्होंने। जब जब मुझे उनका आदेश संकेत द्वारा होता था मैं कोई न कोई क्रिया करके उनका आशीर्वाद अर्जित कर लेता था। श्रोताओं में से संकेत द्वारा मुझे छेड़खानी करने का अनुग्रह होता था। मैं भी समय की खोज में रहता कि कब अवसर मिले तो धीरे से स्वीच दबाऊँ। कभी कभी उनकी तानों के साथ लय-वजन के अनुरूप तबले पर बोल-समूह द्वारा कोई मोहरा लगाता था, तो उद्‌गार निकलते, "वाह! क्या बात है!" ऐसा उत्साहवर्धक प्रोत्साहन देना हर किसी व्यक्ति से अपेक्षित नहीं। आचार्यजी महाविद्यालय में रहते हुए अपना दायित्व भली प्रकार निभाते थे। उनके व्यक्तित्व में ऐसा आकर्षण था कि उनके सामने आते ही अनुशासन का बोध हो जाता था।

संस्मरण-३- 'बंदर प्रसंग'

अण्णासाहब ने किसी समय एक बंदर पाला था। सभी जानते हैं कि विश्वविख्यात वैज्ञानिक चार्लस् डारविन के अनुसार आज का मानव उसी वंशपरंपरा का सदस्य है। वर्तमान युग में बंदर का सहयोग कई विषयों में सिद्ध हो चुका है परंतु रामायण-काल के बंदरों के समान

वह अभी भी नहीं है। आपरेशन-कक्ष में सर्जन के साथ बंदर की भूमिका एक विशिष्ट महत्त्व रखती है। यही विचार संभवत: अण्णासाहब के भी मस्तिष्क में आया होगा। परिवार-सहित जीवनयापन करते ऐसे व्यक्ति को अकेलापन दूर करने का इससे अच्छा साधन क्या हो सकता है? राम के प्रति भक्तों में श्री हनुमान एवम् श्री सुग्रीव के स्मरण करने से जो भक्ति-भाव दर्शाया गया है, वर्तमान में उसकी छाया का एक उदाहरण अण्णासाहब के सहयोगी बंदर का भी है। मैंने जैसा प्रतीत किया वह एक रोमांचकारी दृश्य है, परंतु वास्तविकता इसके विपरीत है जिसका आभास एक परिवाररहित व्यक्ति को ही हो सकता है, अन्यको नहीं। बंदर की क्षमता का अनुमान सरकस से लग सकता है। अण्णासाहब भी इसी आधार पर बंदर की संगत किया करते थे। दोनों में एक समन्वय था। समय-समय पर एक दूसरे को मानसिक प्रसन्नता का सहयोग प्राप्त होता था।

अण्णासाहब अपने कक्ष में मेज पर बैठे बंदर को गाना सुना रहे थे। मैं बाहर से झांक रहा था। बंदर चुप बैठा था। कभी-कभी आंखें मूंद लेता था। अनायास अण्णासाहब ने गाना रोक दिया; बस बंदर तुरंत उनके समीप आकर एक हाथ में खुरचने लगा। उनकी तानों की दाद वह बंदर अपना मुँह ऊपर उठाकर गोलाकार क्रिया द्वारा दिया करता था तथा अपना आनंद प्रकट करता था, ऐसा था वह बंदर। अण्णासाहब उस बंदर को अपनी गोद में भी बिठाया करते थे। उसे कंधे पर बैठा कर प्रांगण में टहलते थे। प्रत्येक खाद्य पदार्थ जो अण्णासाहब खाते थे वे उसे खिलाते थे। जंजीरबंधा वह बंदर मानो उनका परम सहयोगी एवं मित्र हो। बंदर मेज पर बैठा कुछ खा रहा था, पास ही तखत पर अण्णासाहब तानपूरा लेकर गा रहे थे। गायन एवं तानपूरा दोनों रुक गए। बस बंदर उनके निकट आकर अपने हाथ से तार झनझना देता, संकेत था कि बजाइये और गाइये। ऐसा था वह बंदर।

— डॉ. देवेंद्र प्रताप जौहरी, लखनऊ
वाद्यविशारद, प्रवीण, एम.एस्सी., पीएच.डी. (कृषि)

राग एवं बंदिश-रचना का अनोखा करिश्मा

जब मैं संगीत का विद्यार्थी था तब मेरे गुरुजी ने अभोगी राग में एक मध्य लय की बंदिश सिखाई। बंदिश के अंतरे में 'देखी सुजन मन मोही गयो अत' पंक्ति गाई। बंदिश में स्वर, लय और भाव का त्रिवेणी संगम देखकर मुझे सदारंग और अदारंग की भांति प्रतिभासंपन्न 'सुजान' का आभास हुआ और प्रत्यक्ष रूप से मिलने की इच्छा हृदय में जागृत हुई।

बंबई में गुरुवर्य स्वामी श्रीवल्लभदासजी के सान्निध्य में और डॉ. के.जी. गिण्डे तथा श्री. भटसाहब के पास मेरी संगीत की शिक्षा चल रही थी। एक बार स्वामीजी रियाज कर रहे थे और उनके साथ एक और आवाज आ रही थी। मुझे ठीक से याद है कि राग झिंझोटी में 'मेरो मन सखी हर लीनो सांवरिया ने' यह बंदिश चल रही थी। मैं मंत्रमुग्ध होकर सुनता रहा। किंतु अंतरे की चाल इतनी टेढ़ी थी कि वह प्रयास के बावजूद मेरे दिमाग में बैठती नहीं थी। दोनों महानुभावों का रियाज पूर्ण होने पर मैंने प्रयाण किया। सामने बैठे हुए व्यक्तित्व की ओर संकेत करते हुए स्वामीजी ने बताया कि आप संगीताचार्य श्री. रातंजनकरजी 'सुजान'

हैं। बस, इतना कहना था कि मैं भावविभोर हो गया। भूतकाल से मेरे मानस पर एक इच्छा गूँज रही थी - 'सुजान'जी से मिलने की, वह पूरी हो गई। साथ ही उनका गायन भी सुनने का शुभावसर प्राप्त हुआ। बाहर से उनका व्यक्तित्व विशेष आकर्षक नहीं था, पर उनके आंतरिक व्यक्तित्व में जो संगीत था, वह हिमालय की भांति महान था। आवाज में पतलापन, लेकिन तीनों सप्तकों में आसानी के साथ फिरना, तान में वैविध्य, लयकारी की सरगम, यह सब उनके लिए सहज बात थी। उनके बनाए हुए ख्याल, ध्रुपद, ठुमरी, भजन वगैरह गीतों में भक्तिभाव उभर आता है। रागों को भिन्न-भिन्न रूप में देखना और उनकी रचना करना, उनकी विशेषता रही है। बंदिश गाते ही राग को पूर्ण रूप से प्रकट करना, उनके स्वरकरण की गरिमा है।

शीघ्र रचनाकार, मूर्धन्य संगीतज्ञ श्री रातंजनकरजी के समान आजतक मैंने किसीको नहीं देखा है। एक बार संगीत का कार्यक्रम चल रहा था, मैं पास में बैठा था। वे कुछ लिख रहे थे। देखते ही देखते उन्होंने तीन-चार पन्ने भर दिए। मैंने पूछा कि आप क्या लिख रहे हैं। उन्होंने बताया कि एक राग के बारे में सोचा और लिख दिया। लो पढ़ो। मैंने देखा कि मंच पर एक कलाकार प्रात:कालीन राग गा रहा था और अण्णासाहब किसी भिन्न राग का स्वर-विस्तार तथा गीत का स्वरकरण कर रहे थे। संगीत में उनकी पैंठ का यह करिश्मा था।

एक बार रातंजनकरजी गाना गा रहे थे। उसमें उन्हींकी बनाई बंदिश 'मैं गई जमुना नीर भरन सखी' इतनी भावुकता से वे गाए कि सचमुच 'सखी जमुना में नीर भरने गई हो'। का आभास हुआ। यह थी उनकी गायकी की मधुरता जो आज भी मेरे स्मरणपटल पर छाई हुई है।

साहित्य के साथ लालित्यपूर्ण बनाई बंदिश को स्वरकरण से अलंकृत करके संगीत-जगत् को प्रदान करनेवाले अण्णा को मैं श्रद्धापूर्वक कोटि कोटि वंदन करता हूं!

— स्वामी चैतन्यस्वरूप

वल्लभ संगीत विद्यालय के स्नातक तथा वहींपर एक अधिकारी

आदर्श शिक्षक - डॉ. एस.एन. रातंजनकर

मैं अपनेको सौभाग्यशालिनी समझती हूं कि मुझे गुरुदेव, डॉ. रातंजनकर के चरणों में बैठकर सीखने का अवसर मिला। मेरी यह इच्छा १९४७ में फलवती हुई जब मैं छात्रा के रूप में मैरिस कॉलेज, लखनऊ (भातखण्डे संगीत महाविद्यालय) में प्रविष्ट हुई। कुछ ही समय बाद गुरुदेव ने मुझसे पूछा कि क्या मैं संगीत की कक्षाओं में अध्यापन-कार्य करना चाहूंगी? मेरी अवस्था तब कुल १७ वर्ष की थी, मेरे पांव तले से धरती खिसक गई और मैंने धीरे से कहा, "मुझमें ज्ञान की कमी है, मैं इस जिम्मेदारी का निर्वाह न कर सकूंगी।" गुरुदेव ने हंसकर कहा - "तुम अपने ज्ञान का मापक कैसे हो गई, यह काम मुझपर छोड़ो, कल से तुम तृतीय वर्ष तक की कन्याओं की कक्षाएं लिया करोगी। न घबराओ और न संकोच करो; तुम इसके योग्य हो तभी मैं कह रहा हूं, अन्यथा न कहता।" और दूसरे दिन से मैं अध्ययन के साथ-साथ अध्यापन-कार्य भी करने लगी।

आज भी वे दिन मस्तिष्क में चलचित्र की भांति उभर आते हैं जब मैं चार वर्ष की थी और मेरे पूज्य पिता एवं मेरे प्रथम संगीत-शिक्षक गायनाचार्य पं. रामसम्भार शर्मा, राजगायक, बलरामपुर स्टेट, उ.प्र. मुझे राजा साहब के घर, विशेष कर रेडियो पर पूज्य अण्णासाहब का गायन सुनाने के लिए ले जाते थे, उन दिनों रेडियो एक संपत्तिशालियों का शौक था; यह सन १९३४ की बात है। पिताजी पू. अण्णासाहब के बडे प्रशंसक थे और उनके प्रति बड़ी गहरी निष्ठा रखते थे। बलरामपुर में आयोजित होनेवाले अखिल भारतीय संगीत सम्मेलनों में, भारत के सुविख्यात कलाकार आते थे और उनमें श्री रातंजनकरजी भी आमंत्रित होते थे। मेरे पिताजी कहते - "यह केवल संगीतज्ञ ही नहीं, इनमें आदर्श शिक्षक के सभी गुण विद्यमान हैं, देखो कैसा सच्चा स्वर लगाते हैं और कितना साफ-सुथरा गाना गाते हैं। मेरी हार्दिक इच्छा है कि तुम्हें इनसे सीखने का अवसर मिले।"

सन १९४० में मैं तृतीय वर्ष (मध्यमा) की परीक्षा देने लखनऊ आई। सर्वश्री अण्णासाहब, नातू साहब, राजाभैय्या पूछवाले आदि से गठित परीक्षा-समिति ने हमारी परीक्षा ली, उस समय तो अण्णासाहब कुछ नहीं बोले। लेकिन कुछ ही दिनों बाद जब उनका पत्र मेरे पिताजी के पास आया कि यह बच्ची बड़ी होनहार है, तो मेरे हर्ष की सीमा नहीं रही। १९४२ में मैंने 'संगीत विशारद' परीक्षा उत्तीर्ण की और फिर १९४५ से १९४७ में 'महादेवी कन्या पाठशाला' देहरादून में अध्यापन-कार्य करने के पश्चात् गुरुदेव से संगीत सीखने की इच्छा से लखनऊ आई। मैंने उक्त महाविद्यालय से दो वर्ष का अवकाश लिया था। लेकिन गुरुदेव के पितृवत् स्नेह ने ऐसा बांध दिया कि फिर लखनऊ छोड़ न सकी। वहां से बुलावे आते रहे और मुझे क्षमायाचना करनी पड़ती रही।

१९४८ की बात है, उन दिनों ऑल इंडिया रेड़ियो में शास्त्रीय गायन प्रस्तुत करनेवाली संभ्रांत परिवार की महिलाओं का अभाव था। अण्णासाहब का आल इंडिया रेड़ियो में बड़ा मान-सम्मान था। एक दिन हठात् पूछ बैठे, "तुम्हें रेडियो पर गाने में आपत्ति तो नहीं होगी। मेरी इच्छा है कि तुम इसका अनुभव प्राप्त करो।" इसी वर्ष के अंत में मुझे ऑल इंडिया रेडियो से कार्यक्रम देने का आमंत्रण मिला और मैंने अपना पहला कार्यक्रम १९४९ के जनवरी मास में प्रस्तुत किया, यदि बात इतनी ही होती तो उसे यहां लिखने की आवश्यकता नहीं थी, यह बात मैं केवल इसीलिए लिख रही हूं कि वे केवल संगीत की कक्षाओं में ही नहीं, कक्षा के बाहर भी मार्गदर्शन करनेके लिए सजग रहते थे। इस तथ्य के प्रमाणस्वरूप उनके एक पत्र को प्रस्तुत कर रही हूँ जो उन्होंने १६/१/१९४९ को मेरे कार्यक्रम को सुनने के पश्चात् मेरे पास प्रेषित किया था। जौनपुरी जैसे प्रचलित राग को भी उन्होंने किस सूक्ष्म आलोचनात्मक दृष्टि से सुना और किस प्रकार मेरा मार्गदर्शन किया यह तथ्य इस पत्र का प्राण है। पत्र की प्रतिलिपि नीचे प्रस्तुत है:-

श्री बागेश्री देवी,

आपका गाना आज सबेरे, जौनपुरी बड़ा छोटा ख्याल, मैंने सुना। जौनपुरी का बड़ा ख्याल आपने एक ताल में गाया जो झूमरा में है। खैर, उसमें कोई विशेष बाधा नहीं।

आपका गाने का ढंग अच्छा है। गले में कन् अच्छे हैं। गला काफी सुर में है।

जौनपुरी में निषाद तो आरोह में लगता है। पर " ध़ निसां " यह स्वर-विन्यास अधिक होनेपर जौनपुरी पर अड़ाने की छाया पड़ती है। गंधार भी बहुत हिलाया जाने पर अथवा उसको मध्यम का कन् अधिक देने पर भी कान्हड़े की छाया जौनपुरी पर पड़ती है। गंधार कभी कभी सीधा रखते हुए और बीच में 'ध सां' यह स्वरविन्यास रखने की आवश्यकता है। धैवत भी कभी कभी अवरोह में लेकर उसपर न्यास करते हुए पंचम पर आना चाहिए।

ये बातें ध्यान में रखनेयोग्य हैं। इति।

१६-१-४९ **श्री. ना. रातंजनकर**

पुनश्च : आप श्रुतिमंडल में प्रविष्ट हो जाइए। और कभी कभी गाया भी कीजिए उसमें। आपके गाने की जाति रागदारी गायन के लिए अच्छी है।

यह तो केवल एक घटना है। यदि मैं अपनी तथा अपने सहृदयों की भावनाओं एवं अनुभवों को शब्दों में व्यक्त करने बैठ जाऊं तो संभवत: एक ग्रंथ तैयार हो जाएगा। ऐसा शिक्षक मिलना दुर्लभ है जो केवल कुछ वर्षों ही न सिखाकर आजीवन शिक्षण देने की जिम्मेदारी को प्रसन्नतापूर्वक वहन करता रहे। साधना में व्यस्त, अपने अमूल्य क्षणों में से पत्र लिखने के लिए, तर्क-वितर्क द्वारा तथ्यों को समझाने के लिए, जीवन की समस्याओं को सुलझाने के लिए, समय निकालना उनके लिए कितना कठिन था यह हम सभी अनुभव करते थे; लेकिन गुरुदेव समय निकाल ही लेते थे। जब मैंने राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नैनीताल में संगीत विभागाध्यक्ष के रूप में कार्य आरंभ किया तो गुरुदेव अवकाश प्राप्त कर मुंबई में निवास कर रहे थे। उन्होंने वहां से बधाई एवं आशीर्वाद का पत्र भेजा था जो मेरे लिए एक अमूल्य निधि है। गुरुदेव के हाथों से लिखे पत्र पाकर हृदय आनंद से विह्वल हो जाता था और नेत्र सजल हो आते थे। कितना कष्ट उठाकर गुरुदेव अपने शिष्यों को ये पत्र लिखते थे। जब कभी भी उन्होंने मुझे लिखा तो मेरे परिवार के विषय में अवश्य पूछा और सबको आशीर्वाद भेजा। पू. माताजी (गुरुदेव की धर्मपत्नी) आज भी अपने शिष्यों को वही स्नेह दे रही हैं।

श्रीमती बागेश्रीदेवी पांडे, लखनऊ
भातखंडे कॉलेज की स्नातकोत्तर स्तर तक की छात्रा।
संगीत की प्राध्यापक

संगीताश्रम और अण्णासाहब

बंदिश-रचना का करिश्मा

'पद्मभूषण' डॉ. रातंजनकर, हमारे 'अण्णासाहब'.....

नाटा-सा कद, पतला शरीर, सदैव अपनी धुन में खोए हुए, मितभाषी, सत्यवक्ता, ऐसे व्यक्तित्व के स्वामी यानी गागर में सागर-सा व्यक्तित्व।

अण्णासाहब के बारे में मैं बचपन से ही अपने गुरुजी 'स्वामी श्री वल्लभदासजी' से सुनता आया था। उन जैसे विशेष व्यक्ति से मिलने की बहुत ही उत्कंठा थी।

मेरे विचार से १९५३ में ऑल इंडिया रेडियो में उनकी मुलाकात पूज्य स्वामीजी से हुई थी। तब मैंने पहली बार अण्णासाहब को देखा। तत्पश्चात् उनका आना जाना हमारे संगीताश्रम में चलता रहा।

श्री भटसाहब तथा श्री गिंडेसाहब हमारे संगीतालय का कार्यभार संभालते थे। उनके कारण भी अण्णासाहब के, परिचय और संगत का मौका बार-बार मिलता था।

आफताबे मौसिकी, ज्ञानरत्न उस्ताद फय्याजखां साहब का शिष्यत्व स्वीकारने के बाद अण्णासाहब की प्रतिभा में चार चांद लग गए।

आगरा घराने की खूबियां जैसे कि आलाप, सुर का लगाव, बोलतान, बंदिश के शब्दों की भावना की सुंदरता की स्वर द्वारा अभिव्यक्ति तथा सम पर अलग-अलग तिहाइयों के साथ आना। ये सभी खूबियां उस्ताद फय्याजखां साहब से अण्णासाहब को प्राप्त हुईं।

मेरे गुरुजी पूज्य स्वामी श्री वल्लभदासजी उस्ताद फैय्याजखां साहब के प्रमुख शिष्य होने के नाते अण्णासाहब तथा स्वामीजी दोनों गुरुबंधुओं में अगाध स्नेह था। घंटों तक दोनों ज्ञान की चर्चा करते रहते थे।

जहां तक मुझे याद है, पूज्य स्वामीजी ने झिंझोटी राग में मध्य लय की बहुत सुंदर बंदिश तथा भैरव बहार की बंदिश जिसकी अण्णासाहब ने स्वयं रचना की थी, पूज्य स्वामीजी ने अण्णासाहब से सीखी थी। उसी प्रकार पूज्य स्वामीजी के शिष्य श्री रामराव नायक 'बेंगलोरवाले' ते दक्षिण भारतीय राग 'नागरंजिनी' में मध्य लय की चीज की एक बंदिश स्वयं बनाई थी, जिसका उठाव और सम बहुत ही प्रभावशाली था, वह चीज पूज्य स्वामीजी से अण्णासाहब ने सीखी थी और उसे वे बड़े प्रेम से गाते रहते थे। इस प्रकार दोनों गुरु बंधुओं को एक दूसरे के ज्ञान का आदान-प्रदान करते देखकर मेरा हृदय गद्‌गद हो उठता था।

अण्णासाहब की एक और अद्‌भुत खूबी थी कि वे किसी भी नए राग की प्रस्तुति या नई बंदिश को बगैर गुनगुनाए सीधे कागज पर लिख देते थे।

अण्णासाहब ने सैंकडों बंदिशें और कई नए रागों का आविष्कार किया था; इसीलिए वे बैजू बावरा की तरह गायक और नायक दोनों थे।

- स्वामी हरिप्रसाददास
मैनेजिंग ट्रस्टी, श्रीवल्लभ संगीताश्रम,
(सायन), बंबई

लोकसंगीत में पैठ

कितनी सौभाग्यशाली थी मैं कि मुझे वनस्थली में संगीत का श्रीगणेश करवाया श्रद्धेय एस.सी.आर. भट ने। उनसे बादमें कई बार मैं जोधपुर और बंबई में भी सीखती रही। अण्णासाहब के निधन का समाचार वनस्थली में फैला तो भटसाहब इतने उद्‌विग्न हुए कि कोई पुत्र भी अपने पिता के लिए नहीं हो सकता। गुरु का वृत्त मिलने पर ही वे स्वस्थ हो सके। संगीत-संस्थान, जयपुर

के प्राचार्यपद के लिए साक्षात्कार लेने आए अण्णासाहब। एक प्रार्थी थे श्री ब्रह्मानंद गोस्वामी। प्रश्न किया, "आप स्वामी, फिर भी आपके पुत्र-पुत्रियां?" उत्तर भी कम विदग्ध नहीं था, "मेरे गुरु का आदेश था, बेटा, प्रवृत्ति में निवृत्ति और निवृत्ति में प्रवृत्ति देखो।" आलोचना-प्रत्यालोचना के वितंडावाद में अण्णासाहब की रुचि नहीं थी। वे सुलझे हुए विचारों के निष्पक्ष व्यक्ति थे। एक बार कोई सज्जन विष्णु दिगंबर की कटु आलोचना करने लगे तो उन्हें यह कहकर टोकना पड़ा, "आप जानते नहीं कि संगीत-जगत् को उनका कितना योगदान है।"

१९६२ में जोधपुर विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। संगीत विभाग को (जिसकी मैं अध्यक्ष थी) सही मार्गदर्शन मिले, इसलिए मैंने अण्णासाहब को पाठ्यक्रम समिति का बाह्य सदस्य मनोनीत करवाया। भटसाहब के आग्रह पर ही वे आए तथा फिर वर्षों आते रहे, और वह भी तब जब वे अकेले यात्रा नहीं करते थे। एम.ए. का पूरा पाठ्यक्रम उन्होंने ही बनाया जिसे हमने ही नहीं, राजस्थान के सब विश्वविद्यालयों ने अपनाया। पाठ्यक्रम की बैठकों के विवरण संयोजक होने के नाते मुझे ही लिखने होते, पर वह सब भी वे ही कर देते ताकि कोई अशुद्धि न रहे।

प्रारंभ में अण्णासाहब से मुझे श्रद्धासमन्वित भय-सा लगता था, यद्यपि मेरे पति डॉ. नागरमल सहल से उनकी खूब पटती थी और वे घंटों साहित्य-संगीत के विषय में चर्चा करते रहते। स्टाफ नोटेशन और पाश्चात्य संगीत के बारे में मुझे पढ़ाना था। अच्छी पुस्तक अनुपलब्ध होनेके कारण हिम्मत करके अण्णासाहब से ही मैंने निवेदन किया। आधे घंटे में ही वह सब मुझे हस्तामलकवत् हो गया। वह मेरे जीवन की थाती है। बंबई में बच्चों के साथ उनसे मिलने गई तो वे बड़े प्रसन्न हुए तथा बाहर आकर देखते रहे कि हम निर्विघ्न 'मुरारका हाउस' पहुंच जाएं। ऐसा था उनका स्नेह। मेरी छोटी लड़की ज्योत्स्ना उनसे बहुत हिल गई थी और निर्भय उनके पास पहुंच जाती थी। अण्णासाहब ने उसका नाम रख दिया था 'बातुन'।

जोधपुर में एक बार वे भटसाहब को रात के दस बजे हमीर का टप्पा सिखाने लगे, 'जाग रहे सगरी रतियां।' अंतरे की अंतिम पंक्ति तारसप्तक के पंचम से शुरू हो रही थी। जब तक भट साहब के गले से वह सोलह आने ठीक नहीं निकली तबतक दोनों गाते रहे। अण्णासाहब रात को देर तक पढ़ते रहे थे। एक बार मैंने उनको बाइबल पढ़ते देखा।

लोक-संगीत वे बड़े चाव से सुनते गौरीबाई और लंगाओं आदि से। एक-से स्वर होते हुए भी लोक-संगीत और रागदारी संगीत में क्या भेद-साम्य है, यह सब वे मुझे समझाते रहते। मैंने पूछा-"एक ही राग में अनेक भावों का समाहार कैसे हो सकता है?" उनका उत्तर था, "विभिन्न स्वर-संगतियों का विभिन्न स्थानों, विभिन्न प्रकारों, न्यास-स्थानों तथा विभिन्न लय-प्रयोगों से।" उन्होंने बताया कि एक ही राग की कई बंदिशें क्यों तैयार करनी चाहिए? स्वरोच्चारों तथा विभिन्न स्वर-संगतियों का महत्त्व तभी बोधगम्य होता है। अण्णासाहब की बंदिशों में मैंने स्वयं देखा कि एक ही राग की सब बंदिशों के चेहरे अलग दीखते हैं। कायकिणीजी की पुस्तक 'दिनरंग' में यही प्रतिफलित हुआ है। अण्णासाहब ने मुझे सांगीतिक नई दृष्टि दी। वस्तुतः वे मेरे परम गुरु थे।

–श्रीमती शांति सहल

भूतपूर्व अध्यक्षा, संगीत विभाग, जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर

षष्ठिपूर्ति : सुजान संगीत समारोह में पं. कुमार गंधर्व का गायन, तबले पर श्री. वसंतराव आचरेकर, संवादिनी : गोविंदराव पटवर्धन, तानपूरा : पंढरीनाथ कोल्हापुरे, वसंधरा पंडित (कोमकली)

सुजान गौरव समारोह के समापन में पं. रातंजनकर का गायन : साथसंगत (बाएं से), ऐतवड़ेकर (तबला) चिदानंद नगरकर, के. जी. गिंडे (तानपूरा)

'षष्ठिपूर्ति : सुजान संगीत समारोह' में सहभागी कलाकारों के साथ
(नीचे) दिनकर कायकिणी, प्रभाकर चिंचोरे,.... दंताळे, एस्सीआर भट, ऐतवडेकर

From Left to Right :

Sitting : Shri. Tarun Kant Chowdhary, Shri Har Dayal Malhotra, Prin. Shri. S.N. Ratanjankar Shri. K.K. Kapoor, Shri. Rajendra Misra.

Standing: Km. Dilraj Kaur, Km. Jhunu Day, Km. Purnima Bhattacharya, Km. Indu Kela, Km. Madhu Bhatnagar, Km. Shipra Sinha, Smt Kamala Srivastava.

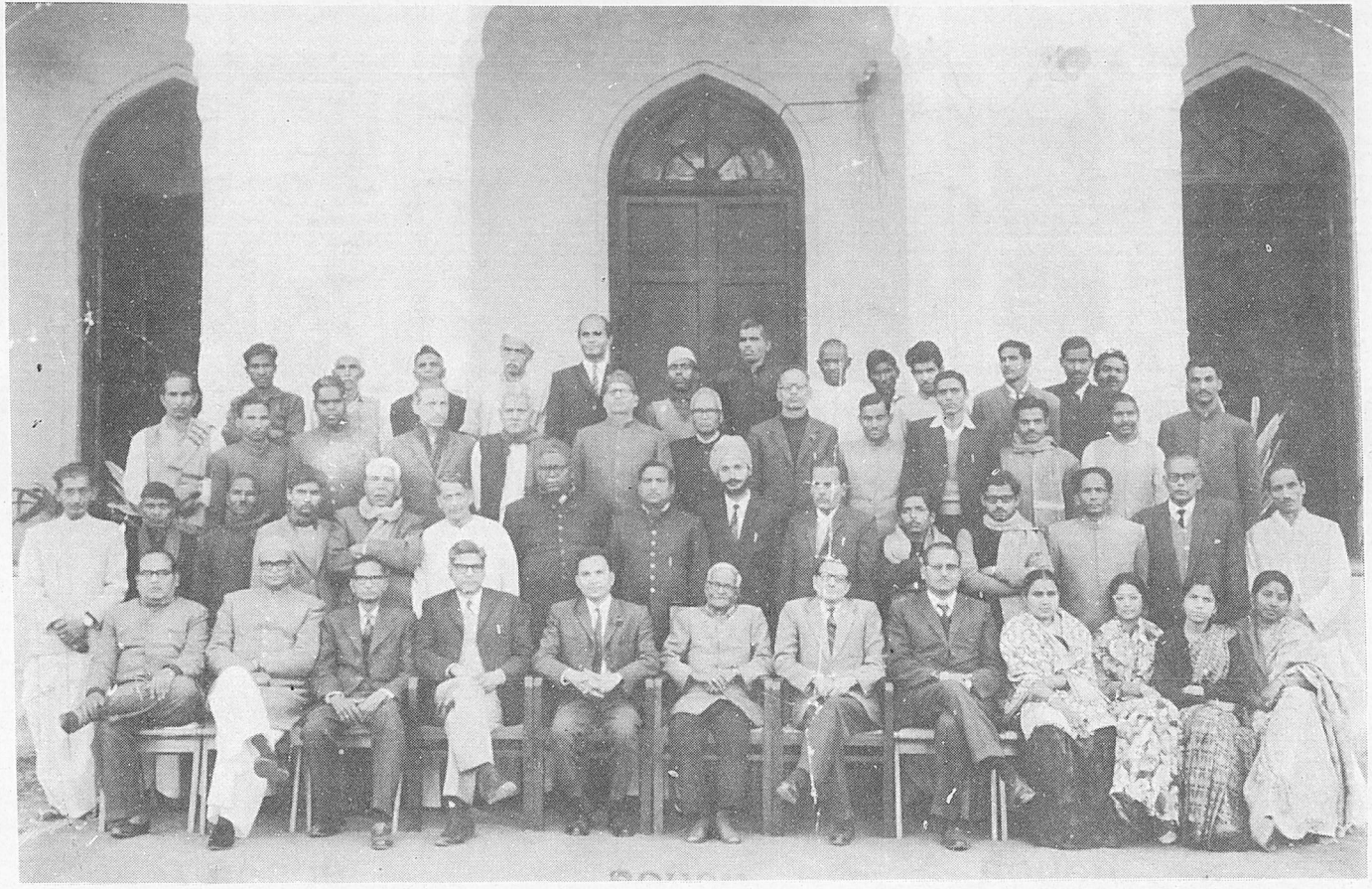

बिदाई !... पर जुदाई नहीं !! भातखंडे विद्यापीठ से पुनश्च बंबई : १२ फरवरी १९७०

बम्बई आकाशवाणी (१९५५) 'शिवमंगलम्' संस्कृत श्रुतिका : प्रस्तुतकर्ता पं. रातंजनकर
कलाकार : (बाएं से) वी. जी. जोग, कुमुद मोघे, पं. रातंजनकर, वी. डी. अंभईकर, वामनराव सडोलीकर, लक्ष्मी शंकर, हाफिज अहमद, पणशीकर

हैदराबाद शासकीय संगीत महाविद्यालय
अध्यापक गण तथा कार्यालय के अन्य सदस्यों के साथ पं. रातंजनकर, सी. पी. गोडसे,
जी.एन. दंताळे, सां. कार्यकारी संचालक तथा उस्ताद शेख दाऊदखां

ग्वालियर के संगीतानुरागी रायबहादुर लक्ष्मण भास्कर मुळे तथा
उनके परम स्नेही भैय्यासाहब के समवेत।

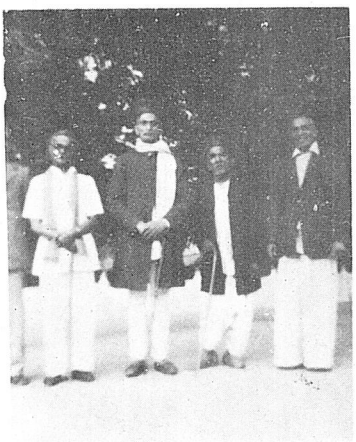

माधव संगीत महाविद्यालय के प्रांगण में ग्वालियर घराने के पुराणपुरुष कृष्णराव शंकर पंडित के समवेत अण्णासाहब। साथ में पं. राजाभैय्या पूछवाले तथा उनके शिष्य श्री सदाशिव अग्निहोत्री।

संगीताचार्य की शौकिया फोटोग्राफी

संगीत विश्वकोश 'संगीत महाभारती'
के संपादक मंडल की बैठक १९६५
आचार्य रातंजनकरजी के बंबई स्थित
निवास में आचार्यजी के साथ
(कुर्सी पर बाएं से)
प्रो. ऐण्टशेर लोबो, प्रो. आर. सी. मेहता
(नीचे) पं. निखिल घोष तथा अन्य सदस्य

।। अभिनंदन-पत्र ।।

।। सुस्वराः सन्तु सर्वेऽपि ।।

सेवा में,

लोकवंद्य पद्मभूषण डॉ. श्रीकृष्ण नारायण रातंजनकर !

परम पूज्य आचार्य प्रवर,

हम लोगों के लिए आज यह बड़ा ही शुभ दिवस है क्योंकि सहसा आपका यहाँ आगमन हुआ। यों तो आप इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय के प्रथम उपकुलपति होने के कारण हमारे ही नहीं समस्त संगीत प्रेमीजनों के लिये भक्ति श्रद्धा और स्नेह के पात्र हैं तथापि, आपके विशेष सान्निध्य और सम्पर्क से हमारे समान आपके जिस छात्र वर्ग को विशेष लाभ हुआ है उनके लिए आपका यह शुभागमन सचमुच एक अपूर्व उल्लासपूर्ण उत्सव का दिन ही हो गया है। आपके दर्शन मात्र से हम लोग वास्तव में कृतार्थ हो गये हैं।

श्रीमान् संगीत कला महोदधि,

आपके द्वारा संगीत विद्या के प्रति हम लोगों के हृदय में जो प्रेरणा उत्पन्न हुई है उसीसे आपको कुछ समय के लिये ही अपने बीच पाकर हम सभी यह अनुभव कर रहे हैं कि इस क्षणिक मिलन के द्वारा भी हम लोगों में यह प्रेरणा सच्ची अन्तःस्फूर्ती के रूप में परिणत हो गई है। यह कौन नहीं जानता कि संगीत शास्त्र के लिये आप अक्षय गौरव के स्तंभ हैं। आपकी ज्ञानगरिमा तथा कला-कुशलता के कारण ही आपको भारतीय शासन ने भी 'पद्मभूषण' की उपाधि देकर आपको ही नहीं भारत को गौरवान्वित किया है। आपने आजीवन संगीत की साधना को ही अपना जीवनव्रत मानकर इसीकी श्रीवृद्धि के लिए सदैव प्रयत्न किया। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि वर्तमान युग में प्राचीन संगीत शास्त्र के पुनरुद्धार के साथ नवीन संगीत कला के निर्माण में आपके इन प्रयत्नों से अखिल भारतवर्ष को नवीन दृष्टि प्राप्त हुई है। हम लोग, जो आपसे सदैव प्रेरणा पाते रहे हैं इस अवसर पर आपको इस अभिनन्दन-पत्र के रूप में अपनी सच्ची भक्ति, श्रद्धा और स्नेह की अंजलि अर्पित कर रहे हैं। जो स्वयं गौरव का स्तंभ है, जो स्वयं लोक वंदनीय है, उसको किसी प्रकार से अभिनन्दन-पत्र वा मान-पत्र देकर हम लोग उसकी सच्ची महिमा को प्रकट नहीं कर सकते। परन्तु, हमें विश्वास है कि हम सब लोगों का यह हृदय के सच्चे भावों से युक्त अभिनन्दन श्रीमान् आचार्य प्रवर के द्वारा सच्ची भक्ति का प्रतीक समझा जाकर सस्नेह स्वीकार करने योग्य होगा।

अन्त में, हम लोग आपकी सादर और सभक्ति वन्दना कर, भगवान से यही प्रार्थना करते हैं कि आप चिरायु होकर भारतीय संगीत कला की सदैव गौरव वृद्धि करते रहें। अन्तःकरण से हम सब लोगों की यही शुभ-कामना है।

खैरागढ़
दिनांक २४ अप्रैल १९६४.

आपके स्नेहभाजन,
इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय के
समस्त छात्र वर्ग, अध्यापक तथा कर्मचारीगण

सादगी की प्रतिमूर्ति

बात जुलाई १९५५ के आरंभ के दिनों की है। महाविद्यालय की गेट पर एक तांगा रुका, एक विदेशी सूट-बूट में सजा युवक उतरा; अमेरिका से आया था वह। गेट के भीतर झाका। किसीको एक बनियन-जांघिये में काम करते देखा तो रौब से पूछा, "प्रिंसिपलसाहब हैं? कब मिलेंगे?" दयनीय-से दिखनेवाले बगीचे में काम कर रहे व्यक्ति ने उत्तर दिया, "शाम को आना.... इस कमरे में मिलेंगे.... प्रिंसिपल साहब" और फिर बागबानी में लग गया वह पूर्ववत्।

शाम को जब वह विदेशी उस कमरे में पहुंचा तो देखा... अरे!! यह तो वही सुबहवाला व्यक्ति है.... प्रिंसिपल... डॉ. श्रीकृष्ण नारायण रातंजनकर... इतने... नम्र और इतने आड़ंबररहित थे हमारे सबके प्रिय अण्णासाहब! उस विदेशी युवक (जो कि महाविद्यालय में प्रवेश लेने आया था) की तो लज्जा और संकोच से बोलती ही बंद हो गई थी। परंतु प्रिंसिपलसाहब थे निर्विकार। रातंजनकर जी अत्यंत सरल और सादगी से रहते थे। संग्रह के नाम पर पुस्तकें ही उनकी साथी-संगी थीं। महाविद्यालय के एक छोटे-से कमरे में उन्होंने जीवन के ३०-३२ वर्ष बिना किसी आड़ंबर के गुजारे। संगीत-सेवा में समर्पित ऐसा दूसरा उदाहरण नहीं मिलेगा। त्याग की वे प्रतिमूर्ति थे। महाविद्यालय की व्यवस्था शिक्षकों की सहायता और आयोजनों के समय उपस्थित आर्थिक संकट के समय अनेक बार उन्होंने अपनी स्व-अर्जित संपत्ति और पुस्तकों से आई धन-राशि महाविद्यालय के लिए नि:संकोच खर्च कर दी। उनकी-सी वैरागी वृत्ति आज तो कहीं देखने को नहीं मिलती। यह उनकी तपस्या, त्याग और अथक परिश्रम का ही फल है कि भातखण्डे संगीत महाविद्यालय लखनऊ की शिक्षा-दीक्षा की प्रशस्ति चारों दिशाओं में फैली और यहां के प्रशिक्षित लोग देश भर में संगीत-शिक्षा के प्रसार में लगे। मैं उन दिनों महाविद्यालय में दो विषयों का विद्यार्थी था - गायन एवं तबला। प्रिंसिपलसाहब महाविद्यालय की प्रत्येक कक्षा और विद्यार्थियों पर नजर रखते थे। किस क्लास में क्या सिखाया जा रहा है। कौन विद्यार्थी क्या कठिनाई महसूस कर रहा है। सब उन्हें पता रहता था। तीन वर्षों तक तो उन्होंने मुझे व्यक्तिगत रूप से प्रोत्साहित किया परंतु मध्यमा परीक्षा के समय वे मुझसे बोले, अब बस.... दो घोडों की सवारी नहीं चलेगी... एक विषय रखो, तबला सीखो, उसीमें खूब मेहनत करो। उनका वह निर्देश मेरे लिए आशीर्वाद बन गया। आज उन्हींके बताए मार्ग पर चलकर मैं इसी महाविद्यालय में शिक्षक हुआ।

–सुधीरकुमार वर्मा, लखनऊ

तबलावादक, उ. थिरकवा के शागिर्द, भातखण्डे कॉलेज के अध्यापक

सहृदय रोबीला व्यक्तित्व

डॉ. रातंजनकरजी से मेरा निकट का गुरुशिष्य-संबंध वर्ष १९५६ तक रहा। उसके बाद वे उपकुलपति, खैरागढ़ विश्वविद्यालय का कार्यभार ग्रहण कर यहां से गए।

शासनद्वारा इस संस्था का अधिग्रहण होने पर प्रो. जी.एन. नातू के अवकाश-प्राप्ति के पश्चात् वर्ष १९६६ में वे पुन: बुलाए गए और वर्ष १९७० तक मैं पुन: उनके निकट बना रहा। इस लम्बी अवधि की कई घटनाएं एवं संस्मरण आज भी मेरे सामने उजागर होकर दुहर जाते हैं।

मेरे सम्मुख उनके व्यक्तित्व की जो तस्वीर उतरती है, वह है - छोटा कद, तना हुआ शरीर, हाथ में छोटा डंडा विद्यार्थियों को अनुशासित करने के लिए, आवाज में कड़क, परंतु गाते समय आवाज में मधुरता, मंच पर वीर आसन की बैठक, एक उच्च कोटि के गायक एवं वाग्गेयकार की प्रतिमूर्ति, कुल मिलाकर एक अनूठा रोबीला व्यक्तित्व। समय एवं नियमों के पाबंद छात्र-छात्राओं पर कड़ी नजर, महाविद्यालय के शिक्षण-कार्य पर विशेष ध्यान, सभी के सुख-दुख में सम्मिलित, सदैव महाविद्यालय की प्रगति तथा उन्नति की कामना रखनेवाला व्यक्तित्व जो कदापि भुलाया नहीं जा सकता।

उनकी सहृदयता का एक नमूना :- उन्हें पशु-पक्षियों से विशेष लगाव था। पंक्षियों को बंद पिंजरों में देखना उन्हें असह्य लगता था। प्रत्येक रविवार को पशु-पक्षियों की बजार नक्खास, चौक के समीप जाकर पशुपक्षियों को खरीद कर वे हार्डिंग ब्रिज, जो पक्का पुल कहलाता, वहां जाकर उस पुल से एक एक पक्षी को पिंजड़े से आजाद करते हुए आनंदित होते थे, कैसा सुंदर विचार, कैसा स्नेही मन! वे सहृदयता की प्रतिमूर्ति थे।

डॉ. रातंजनकरजी महाविद्यालय के लिए तन मन धन से सेवा करने में तत्पर रहते थे। वे अपने लेखन-कार्य एवं कार्यक्रमों से अर्जित धनराशि को भी महाविद्यालय के कठिन आर्थिक क्षणों में दिया करते थे। उस समय शिक्षकों को वेतन मिल जाए और महाविद्यालय का शिक्षण-कार्य अवरुद्ध न हो इसलिए निजी संपत्ति को उत्सर्ग करने की उनकी मिसाल अकेली है।

–कृष्णकुमार कपूर
असिस्टंट प्रोफेसर (वोकल)
भातखंडे म्यूजिक कालेज, लखनऊ

ऐसे कठोर, ऐसे कोमल!

स्व. पंडित रातंजनकरजी उर्फ आप्त स्वकीयों, निकटवर्तियों के 'अण्णासाहेब' के सम्बन्ध में सोचते ही उनकी छोटी-सी किन्तु रुआबदार मूर्ति आंखों के सामने खड़ी हो जाती है। अण्णासाहब का व्यक्तित्व मुझे तो कटहल जैसा लगता था। बाहर से कांटों से युक्त, लेकिन अन्दर से बहुत ही मिठास से भरा हुआ। उनकी बातचीत का ढंग बाहर से बिल्कुल अलग प्रतीत होता था, जिससे उनके सामने जाने से भी डर लगता था, बात करना दूर ही रहा। परंतु उनके सान्निध्य में रहने के बाद उनके मृदु स्वभाव का अंदाज आता था।

मैंने पहली बार उन्हें १९४१ में लखनौ के म्युझिक कॉलेज में देखा था और वह भी मेरे परीक्षक के रूप में। मैं उस समय 'इंटरमीजिएट इन म्युजिक' की परीक्षा देने वहां गई थी। उनके साथ और अन्य परीक्षक थे स्व. पं. राजाभैय्या पूछवाले तथा इन लोगों के साथ श्री वाड़ीलालजी तथा श्री बसू भी वहां बैठे थे। एक बड़े-से हॉल में श्रोताओं तथा छात्र-छात्राओं की भीड़ और उसपर पूज्य अण्णासाहब को देखा, बस हो गई परीक्षा! कारण कि उनके बारेमें लोग जो तरह-तरह की बातें करते थे उससे पहले से ही मैं नर्व्हस थी, उसपर परीक्षा दो घंटे तक चलती रही। पता नहीं मैं कैसे गा गई; पर बाहर आते ही मैंने रो दिया केवल डर के मारे। परीक्षा-फल में मेरा नंबर ऊंचा देखकर मुझे कुछ क्षणों तक विश्वास ही नहीं हो रहा था।

मेरे पति स्व. राजाभाऊ पोहनकर सन १९४० से लखनऊ के मैरिस म्युझिक कालेज के विद्यार्थी रहे। वे पं. एस.सी. आर. भटजी की क्लास में पढ़ते थे। कॉलेज में रहने से अण्णासाहब के सम्पर्क में बहुत आए। उन्हींसे मैं अण्णासाहब के बारे में बहुत-सी दिलचस्प तथा प्रशंसाभरी बातें सुनती थी। वे मुझे हमेशा समझाते थे कि अण्णासाहब वैसे नहीं हैं, जैसे कि तुम लोग सोचते हो। वे अत्यंत सहृदय तथा नरम मिजाज के हैं। अण्णासाहब जब पहली बार हमारे घर पर ठहरे तब उनके अन्तरंग का परिचय हुआ। वे जब भी जबलपुर आते थे हमारे ही साथ रहें यह हम लोगों का आग्रह था। उनके सान्निध्य में रहकर उनके स्वभाव के बहुत-से पहलू मालूम हुए। उनकी विनोदबुद्धि का अनुभव करने के कई अवसर मुझे प्राप्त हुए। उनकी विद्वत्ता के बारे में तो मैं क्या बताऊं। छोटे मुंह बड़ी बात होगी। उनसे ध्रुपद-धमार गायकी तथा कुछ थोड़े-से राग सीखने का सौभाग्य मैंने पाया है। ज्ञान का अथाह सागर थे अण्णासाहब और उनकी विशेषता यह थी कि सीखते समय छात्र के कितनी भी गल्तियां करने पर भी नाराज नहीं होते थे, यह मेरा निजी अनुभव है। विद्यादान करने में भी उदार थे वे। मेरे पुत्र अजय पोहनकर को उसके बचपन में ताल पंचानन में तिलक कामोद की सिखाई हुई उनकी एक बंदिश अभी तक मुझे याद है।

कभी कोई घटनाएं ऐसी हुई हैं कि उनके स्वभाव की गहराई को समझना हम लोगों के लिए मुश्किल था। मैं 'संगीत-निपुण' की परीक्षा देने लखनऊ गई थी। मेरे पति साथ थे। वे सहज ही वहां अण्णासाहब से मिलने गए तो उनके व्यवहार से उन्हें बहुत दुख हुआ। वापस लौटने पर बोले, "तुम्हारे कारण आज अण्णासाहब ने मुझसे बात नहीं की, मेरी ओर दुबारा देखातक नहीं।" अर्थात् मेरी परीक्षा होने के बाद फिर उनका व्यवहार पहले जैसा ही रहा तब हमारे साहबजादे का उनके प्रति प्रेम, आदर उमड़ आया।

एक अन्य घटना १९५२ की है, हम दोनों ने रेडिओ ऑडिशन नागपुर आकाशवाणी से दिया और अन्य लोगों के साथ ऑड़िशन लेनेवालों में अण्णासाहब थे। उस जमाने में ऑड़िशन पास होना वह भी अण्णासाहब के हाथों दुष्कर लगता था। वह ऑडिशन क्या, अच्छी खासी परीक्षा ही होती थी। मैं तो पास हो गई लेकिन मेरे पति फेल हुए। उन्हें दूसरे भी रागों में बड़ा ख्याल पूछा तो उन्होंने नहीं गाया। अण्णासाहब तपाक से बोले, "नहीं आता तो ऑडिशन में क्यूं बैठे हो।" वे बोले, "ठीक है, अगले साल दूंगा ऑडिशन" और तानपूरा रखकर चले आए बाहर। देखने में यह घटना बहुत ही छोटी लगती है लेकिन इन दोनों घटनाओं से उनके नि:स्वार्थ, स्वभाव का दर्शन होता है। चाहे अपने हों या पराए, उन्होंने किसीसे पक्षपात नहीं किया था, किसीका नुकसान भी नहीं किया।

इसी प्रकार की एक और घटना याद आती है। सन १९५५ में पी.एस. सी. (पब्लिक सर्व्हिस कमिशन) के संगीत-व्याख्याता पद का इंटरव्ह्यू था जो लगातार आठ दिन तक चल रहा था। मैं भी उसमें एक कैंडिडेट थी। आमंत्रित रसिकों के सामने १॥-२ घंटे गाना तथा सवालों के जवाब देना और वह भी अण्णासाहब से - बापरे! किसीको इंटरव्ह्यू में कहा जा रहा था, "संगीत के व्याख्याता बनने जा रहै हैं आप और तानपूरे में मध्यम का पंचम नहीं करते बन रहा, क्या शिक्षा देंगे आप कॉलेज के विद्यार्थियों को..." और रागों के बारे में भी बहुत कुछ सवाल सुने और मुझे तो पसीना छूटने लगा। भले ही लोग उनकी अनुपस्थिति में कुछ भी

कहें, उनके सामने जवाब देने की अच्छे-अच्छों की हिम्मत नहीं होती थी। एक संगीत महाविद्यालय के प्राचार्य थे उन्हें भी उनके पद की गरिमा रखने की याद स्पष्ट शब्दों में उन्होंने दी थी। योग्यायोग्यता का ख्याल बहुत रखते थे। हम लोगों के लिए तो वे आदरणीय श्रद्धास्थान थे और मन में उनके प्रति आदरयुक्त डर था।

डॉ. रातंजनकरजी का स्वभाव मजा किया भी खूब था। उनकी सेहत मेरे देखने में तो कभी स्वस्थ, तन्दुरुस्त नहीं थी। उनका आहार भी अति अल्प था। जब वे हमारे यहां रहते थे, लगता था उन्हें कुछ-कुछ बनाकर खिलाएं। उस समय वे हंसकर कहते, "भई मेरा शरीर तो देखिए, क्या मैं हाथी हूं जो इतना खाऊं?" और उसके बाद वे कई मजेदार किस्से सुनाते थे।

अण्णासाहब की महफिल सुनने का सौभाग्य तो मुझे नहीं मिला किन्तु पोहनकरजी से अक्सर वर्णन सुनती थी अलग-अलग महफिलों का। होली की महफिल का वर्णन करते समय तो पोहनकरजी मन ही मन लखनऊ पहुंच जाते थे। स्व. पं. वसंतराव देशपांडेजी जो हमारे घर आते रहते थे, के मुंह से मैंने अण्णासाहब की प्रशंसा सुनी है। वे बोलते थे, "तुम्हें पता नहीं होगा शायद, अण्णासाहब बहुत सुरीले गाते थे, मैंने बम्बई में उनका बहुत अच्छा गाना कई बार सुना है।" वसंतराव को किसी के गाने की तारीफ करते हुए मैंने बहुत कम सुना था, अत: यह बात सुनकर मेरा हृदय उनके प्रति आदर से भर आता था।

मैंने पीएच.डी. के लिए जो शोध-प्रबन्ध लिखा था वह है 'छत्तीसगढ़के लोकगीत'। अण्णासाहब छत्तीसगढ़ के ही खैरागढ़ गांव में 'इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय' के उपकुलपति ३-४ वर्ष रह चुके थे तब उनका वहां के लोकसंगीत का अध्ययन बहुत विस्तृत था मेरी जानकारी में। मैंने वहां के लोकगीतों का विस्तारपूर्वक नोटेशन किया था, गीतों के साथ प्रयुक्त होनेवाले वाद्यों पर बजने वाली धुनों का भी। और मुझे गर्व है कि वह काम अण्णासाहब ने बहुत सराहा था।

डॉ. सुशीला पोहनकर, बंबई
खैरागढ़ से पीएच.डी.,
जबलपुर विश्वविद्यालय संगीत विभाग अध्यक्ष (भूतपूर्व),
रचनाकार और गुरु।

ऐसे इंद्रधनुषी अनुभव और संस्मरण

गुरु से केवल तालीम प्राप्त करना पर्याप्त नहीं है। वस्तुत: उनके सान्निध्य में रहकर अनेक छोटी-मोटी बातें सीखनेको मिलती हैं। इस बात की प्रतीति तो श्री भटसाहब, श्री गिंडेसाहब, श्री नगरकरसाहब के संपर्क में रहकर हो ही गई थी; किंतु अण्णासाहब के सान्निध्य में जो अनुभव प्राप्त हुए उन्हें कभी भुलाया नहीं जा सकता।

(१) एक बार अनेक कलाकारों की एक महफिल में, जहां अण्णासाहब भी उपस्थित थे, एक गायिका ने शामकल्याण गाया था। उन दिनों हमारा भी शामकल्याण चल रहा था।

अवकाश-काल में अण्णासाहब अपने गवालिया टैंक के पास के निवास-स्थान पर हमें पढ़ाते थे। पढ़ाते समय उन्हें उस महफिल का स्मरण हुआ। उन्होंने हमसे पूछा - "क्या परसों का शामकल्याण सुना?" हमारे 'हां' कहनेपर उन्होंने पूछा–"उसमें कौन-सी विशेषता तुम्हें नजर आई?" हममें से कोई भी उत्तर नहीं दे सका। तिसपर उन्होंने कहा - "तो फिर तुम लोग आखिर सुनते क्या हो? हमेशा कानों को खुला रखकर सुनना चाहिए। वह महिला अवरोह में तीव्र मध्यम लगाती थी; यह बात तुम्हारे ध्यान में कैसे नहीं आई? आगे चलकर सावधानी के साथ सुना करो।" हमें बहुत अच्छी सीख मिल गई और आगे चलकर हम श्रवण में चिकित्सक बुद्धि का उपयोग करने लगे।

(२) अण्णासाहब गपशप के दौरान जो कुछ सिखाते, वह स्मरण में रखनेलायक होता था। एक बार भारतीय विद्याभवन के 'गीतामंदिर' हॉल में श्री बालचंद्र का वीणावादन था। वादन आरंभ करनेसे पहले अण्णासाहब ने नटभैरवी की फरमाइश की। बालचंद्रजी ने उसे तुरंत स्वीकार लिया और नटभैरवी बजाना आरंभ किया। थोड़ी-सी आलापी होने पर अण्णासाहब ने हलके से मेरे कानों में कहा - "नटभैरवी यानी अपना संपूर्ण आसावरी।" बात तुरंत मेरी समझ में आई और नटभैरवी की खुमारी का आस्वाद लेने को मिला।

(३) एक बार 'श्रीवल्लभ संगीतालय' में लड़कियों के समूह-गीत की तालीम चल रही थी। बंदिश के लिए त्रिंबकराव जाधव ने एकताल लगाया। अण्णासाहब वहीं थे; उन्होंने विक्रम ताल की सिफारिश की। त्रिंबकरावजी ने जब इशारे से बताया कि विक्रम ताल उन्हें ज्ञात नहीं है, तब अण्णासाहब ने उनके निकट जाकर उनके कानोंमें ठेका बताया और ज्यों ही जाधवसाहब ने ठेका पकड़ लिया, बंदिश का नूर ही एकदम पलट गया।

(४) अण्णासाहब ने एक बार गाने के सिलसिले में, सहज ही में कहा -"कभी किसीसे यह न पूछो कि अपना गाना कैसा लगा? उलटे लोग खुद ही आकर कहेंगे कि गाना बहुत पसंद आया। किंतु इस प्रशंसा से भी तुम्हें आनंदातिशय में विभोर नहीं होना चाहिए। अपने दोष हमें ढूंढ निकालने चाहिए।" गुरु से प्राप्त यह उपदेश सचमुच अमूल्य है।

(५) अण्णासाहब के गायन के बारे में जितना कहा जाए उतना थोड़ा ही है। अण्णासाहब ने जो जो गाया वह चिरस्मरणीय है, चाहे वह बड़ी महफिल में हो, चाहे छोटी-सी खानगी बैठक में। राग चाहे सीधे-सादे हों, चाहे मुश्किल से मुश्किल हों, गानेकी धारा-प्रवाहिता में कोई अंतर नहीं पड़ता था। एक बार भारतीय विद्याभवन के थिएटर में, जहां कुमार गंधर्व एवं बड़े गुलामअलीखां का गाना सुनने के लिए श्रोताओं का तांता बंधा हुआ था, उन्होंने काफी कानड़ा ऐसा जमकर गाया कि श्रोताओं की तालियों की कड़कड़ाहट से सारा थिएटर गूंज उठा, जिसकी एक झलक उस समय किए गए रिकॉर्डिंग में आज भी सुनी जा सकती है। गायन समाप्त होने पर कुमारजी ने अण्णासाहब की चरण-वंदना करके बड़े गुलाम अली की ओर मुखातिब होकर कहा - "पंडितजी हमारे लिए गाते हैं, जब कि हम सिर्फ लोगोंके लिए गाते हैं।" खांसाहब ने जवाब में कहा - "जी हां, उनके इल्म की यह ईमानदारी है।"

(६) अण्णासाहब एक बार दिल्ली विद्यापीठ की परीक्षा के लिए परीक्षक की हैसियत से दिल्ली गए थे, मैं भी उनके साथ था। उस समय के वहां के आठ-दस दिन के वास्तव्य में सीखनेलायक बहुत कुछ अनुभव प्राप्त हो गए। परीक्षा के दिन एक लड़की देवगिरी बिलावल की छोटी बंदिश 'मानो जरा अब मानिनी' गा रही थी। बंदिश अण्णासाहब की ही थी। 'मानो'

शब्द 'सा ध सा' इस रूप में वह गा रही थी। मैं अण्णासाहब के पास ही बैठा था। अण्णासाहब ने मेरे कान में कहा - "इसमें निषाद आना चाहिए, शुद्ध कल्याण का अंग दीखना चाहिए।"

(७) उसी दिन रातको गपशप के सिलसिले में रावसाहब यानी भातखंडेजी की स्मृतियों का जिक्र हुआ उसमें उन्होंने 'बहार' के बारे में एक बात बताई। एक प्रसिद्ध पुरानी बंदिश की अंतिम पंक्ति में ग्वालियरवालों की पद्धति के अनुसार शुद्ध गंधार लगता था। रावसाहब ने राजाभैय्या से पूछा- "क्या नोटेशन में इस गंधार को ऐसा ही रखा जाएगा?" तिसपर राजाभैय्या ने तपाक से कहा - "बिलकुल नहीं, बहार के नियमानुसार गंधार कोमल ही होना चाहिए।" अण्णासाहब ने दोनों प्रकार से गा दिखाया।

(८) अण्णासाहब के तत्त्वनिष्ठ कड़े स्वभाव पर प्रकाश डालनेवाली दिल्ली के वास्तव्य की एक छोटी-सी घटना है। दिल्ली के वास्तव्य में अण्णासाहब की पसंदगी की हरी स्याही खत्म हो गयी थी। मैं केनॉट प्लेस की ओर अपने दोस्त से मिलने जानेवाला था। अनायास मैं जा ही रहा था, तो मैंने कहा कि स्याही मैं ले आऊंगा। संयोग से, उनकी अपेक्षित स्याही मिल गई। घर आने पर स्याही की शीशी मैंने उन्हें दे दी। किन्तु शीशी लेने से पहले उन्होंने कहा- "दाम कितने दिए सो पहले बताओ" मैंने ननु नच किया तो उन्होंने चिढ़कर कहा - "मेरे प्रश्न का उत्तर दो।" मैं कहने पर मजबूर हुआ। "ढाई-तीन रुपये का ही तो सवाल था। क्या मैं गुरु की इतनी-सी सेवा भी नहीं कर सकता हूं?" इसी विचार के कारण मैं दाम बताना नहीं चाहता था। किन्तु अण्णासाहब के सामने मेरी एक न चली। इसका कारण था उनका तत्त्वनिष्ठ स्वभाव। इस तरह के अनेक अनुभव कइयों ने प्राप्त किए थे यह बात मैं ही नहीं अनेक लोग जानते हैं।

(९) अण्णासाहब ने अपनी साथ-संगत करनेवाले वादकों के साथ कभी अपमानजनक बर्ताव नहीं किया। जो सच्चे विद्वान हैं, वे ही इस प्रकार संयम से पेश आ सकते हैं। शीव (बंबई) में डॉ. अंबर्डेकरजी के यहां अण्णासाहब का गाना था। विलंबित आड़ाचौताल की बंदिश गाते समय तबलजी कुछ घपला कर रहे थे। किन्तु अण्णासाहब झुंझलाए नहीं, न ही उन्होंने तबलची को वहां से हटाया। उलटे मृदु शब्दों में उनसे कहा, "बुवाजी, मात्राएं कम पड़ती हैं।" फिर उन्होंने उन्हें ठेका ठीक तरह से समझा दिया और गाना चालू रखा। महफिल में अपना रोब जमानेवालों अथवा अपना बड़प्पन सिद्ध करने की अकड़ दिखानेवालों को इससे बहुत कुछ सीखनेलायक है।

श्री कमलाकर कुलकर्णी
भातखंडे संगीत विद्यापीठ के स्नातक,
गहरे गान-साधक, डॉ. रातंजनकर तथा
उनके शिष्यों से तालीम प्राप्त

नादब्रह्म की शाश्वत आराधना

मेरा परिचय अण्णासाहब के नाम से एवं स्वयं उनसे बिल्कुल वैसा ही था जैसा कि होश सम्हालते ही शिशु का माता-पिता एवं स्वजनों से स्वत: अनायास ही होता है जिन्हें वह जन्म से ही देखने, पहचानने एवं जानने लगता है।

मेरे पिता स्व. महादेवराव सामन्त (श्री. एम्. के. सामंत) से गुरुवर रातंजनकर का सम्बन्ध गुरु, घनिष्ठ मित्र, अग्रज सभी सम्बन्धों का एक अनूठा, अपूर्व संगम था। गुरु के रूप में पूर्ण आस्था, बंधु एवं मित्र के नाते अनन्य प्रेम एवं चिन्तक, विद्वान्, कलाकार के रूप में अण्णासाहब के प्रति पिताजी की गहन श्रद्धा जीवन पर्यन्त रही।

पू. अण्णासाहब एवं पिताजी दोनों में मैंने एक दुर्लभ एवं अत्यंत मधुर चारित्रिक गुण-साम्य देखा वह था उन दोनों की विनोदप्रियता। दोनों ही विद्वान् थे, गम्भीर विषयों पर मनन-चिन्तन करते थे, पर दोनों में ही बड़ा अनूठा 'Sense of humour' था। दोनों की सरल नोक-झोंक के, विनोद के अनेक प्रसंग मुझे स्मरण आ रहे हैं। पिताजी एक बार दीर्घ समय तक किसी कारणवश अण्णा को पत्र नहीं लिख पाए थे, कि अचानक एक दिन अण्णा का पोस्टकार्ड आया उसी सुपरिचित हरी स्याही से लिखा हुआ -

" My Dear Samantjee,

म ग रे	सा (सा) ग म	नि ध प प	ग म ग –	
रै न दि	ना ऽ न हिं	चै ऽ न अ	ब मो हे ऽ...	इत्यादि..."
०	३	×	२	

(नट बिहाग की यह प्रसिद्ध रचना पू. अण्णासाहब ने पहले पहल इस तरह से अपने हाथ से पिताजी को भेजी थी।)

पिताजी अनेक वर्षों तक नियम से श्री भातखण्डे जयन्ती के अवसर पर अण्णासाहब के पास लखनऊ जाते थे, जहां ७२ घंटों का अखण्ड, अविस्मरणीय संगीत-समारोह होता था। कुछ ऐसा हुआ कि एक बार कई महीनों तक दोनों की भेंट नहीं हो पाई। एक दिन पू. अण्णासाहब का पत्र यों आया—

" Dear Samantjee,

सा	नि ध सा - रे	ग - - ग	म प ग म	ग रे सा सा	
मा	- - नो ऽज	रा ऽ ऽ अ	ब मा ऽ न	नी ऽ ऽ मा	इत्यादि"
	३	×	०		

" ...So you better come over for the Janmashtami-or at least for Bhatkhande aniversary.

Affly Yours
Anna"

(देवगिरी बिलावल की यह लोकप्रिय रचना इस प्रकार भेजी थी पू. अण्णा ने!)

मेरे पिताजी को चित्रकला में रुचि थी और वे स्वयं अच्छे चित्रकार थे। सन् १९५० अप्रैल

में एक बार पिताजी ने राग खम्बावती की प्रसिद्ध बन्दिश 'लाज शरम तोको नाहिं आवै' के आधार पर चित्र बना कर भेजा। अण्णासाहब का उत्तर आया।

".....Your letter enclosed in dear chhotoo's. How delightful! Your लाज शरम is beautiful indeed! Every body here appreciated it so much.....which date did you draw it ? I have stated the date of the composition. Did the thought-current travel Delhi to Benaras or Benaras to Dehli ?"

मुझे आज तक एक आश्चर्य होता है, जब मैं यह सोचती हूं कि मुझे पू. अण्णासाहब से कभी भी डर क्यों नहीं लगा जैसा कि बहुधा महान व्यक्तियों की उपस्थिति में होता है? उनके प्रति अत्यन्त गहन श्रद्धा, भक्ति मेरे हृदय में हर पल रही, परन्तु उनसे भयाक्रान्त कभी भी नहीं हुई। यह उनकी अपार सहृदयता, सहिष्णुता एवं अगाध स्नेहशीलता का परिचायक है। उनसे प्रत्यक्ष सीखते समय सदैव यह ध्यान मन में रहता था कि मैं जल्दी से जल्दी उनकी गाई चीज कंठ में उतार सकूं ताकि बार बार आवृत्ति करने का कष्ट न उठाना पड़े, परन्तु भय का आतंक कभी भी नहीं रहा।

मुझे स्वयं बन्दिशों की रचना करने में रुचि रही है एवं यदा कदा इस दिशा में प्रयास करती रही हूं। पू. अण्णासाहब के जीवन-काल में जितनी भी मेरी स्वरचित कृतियां होती थीं उन्हें पिताजी सर्वप्रथम अण्णा के पास भेजते थे, आवश्यक संशोधन एवं परिवर्तन के लिए। अण्णासाहब तुरन्त उत्तर देते थे अपनी टिप्पणियों के साथ तथा अपेक्षित स्थानों पर संशोधन करके। अनेक बार ऐसा भी हुआ है कि पू. अण्णासाहब ने बन्दिश को ज्यों का त्यों भेजा यह लिख कर कि यह अपने आपमें अच्छी बनी है और इसमें कहीं भी परिवर्तन की अपेक्षा नहीं है। अपनी अति व्यस्त दिनचर्या में से, अन्य महत्त्वपूर्ण, गुरुतर कार्यों के बीच से भी वे ऐसी छोटी छोटी बातों के लिए समय निकाल लेते थे। यह उनकी महनीयता की पराकाष्ठा ही तो थी।

अपने पिताजी के नियमित पत्र-व्यवहार के माध्यम से मैं कितनी ही मांगें साधिकार उनसे किया करती थी और वे कभी भी निराश नहीं करते थे। सन् १९६६ की बात है, मुझे बैरागी भैरव सीखकर गाने की तीव्र इच्छा थी किन्तु मेरे पास बन्दिशें नहीं थीं। मैंने पिताजी से कहा, "पप्पू, अण्णासाहब को लिखो, हमें बैरागी में उनकी रचनाएं चाहिए, हम गाएंगे।" पप्पू ने संकोच के साथ पू. अण्णा को लिखा और १५-२० दिनों में ही अण्णासाहब का पत्र आ गया जिसके साथ संलग्न था एक कागज, जिसके दोनों ओर बैरागी भैरव की दो बन्दिशें थीं विलम्बित एवं द्रुत।

ऐसे ही राग गोरखकल्याण में मेरे अनुरोध एवं आग्रह पर उन्होंने अपनी अत्यन्त ही सुन्दर बन्दिशें बना कर भेजीं, 'बनरा बनी आयो' (विलम्बित) एवं 'नित उठ तुम्हरे ढंग ऐसे....' (द्रुत)।

और तो और, मैं तो इसे अपने दुस्साहस एवं अपनी प्रगल्भता की पराकाष्ठा ही कहूंगी कि एक बार मैंने राग शिवरंजनी में द्रुत एकताल में रचना आरम्भ की - स्थायी तो कुछ ही मिनटों में बन गई, जैसे अन्तस् में कहीं तैयार थी, परन्तु अन्तरे पर आकर बुद्धि एवं कल्पना जाने कहाँ लुप्त हो गई। मैंने भी प्रयास छोड़ दिया। मनुष्य हार कर अन्ततः जैसे ईश्वर की

शरण में जाता है, वैसे ही मैंने दो तीन दिन बाद पिताजी से स्थायी लिखवाकर अण्णासाहब को भेजी और लिख दिया, "अन्तरा नहीं सूझ रहा है।" तुरन्त दस रोज के अन्दर मेरी अधूरी रचना में अण्णासाहब ने अन्तरा जोड़ कर भेज दिया। इस अति दुर्लभ, भगवत्कृपातुल्य परम सौभाग्य को पाने पर आज मैं प्रेमपूर्वक जो गर्वानुभव कर रही हूं वह लेखनी व्यक्त नहीं कर सकती।

सन् १९६६ में शरद्काल में पू. अण्णा कुछ दिनों के लिए हमारे घर आए थे। सदा की भांति सन्ध्या समय उनमें एवं पिताजी में संगीत-चर्चा हो रही थी, संगीत सम्बन्धी अनेक विषयों पर रोचक, प्रेरणादायी वार्तालाप हो रहा था। मैं भी एकाग्रचित्त होकर दोनों की बातें सुनकर आत्मसात् करनेका भरसक प्रयत्न कर रही थी। उसी दौरान अनेक प्रसंगों के मध्य अण्णासाहब ने एक अत्यन्त मनोहर, नवीन राग का सृजन किया और उसका नामकरण किया 'कुमुद्वती' (सा रे म प ध सां। सां ध प म रे सा) राग का स्वरूप, चलन मुझे समझाया और मुझसे गवाया। वहीं उन्होंने विलम्बित एवं द्रुत बन्दिशें भी बना डालीं जो अत्यन्त ही सुन्दर हैं। जब मैंने स्वयं अपनी कल्पना से उस राग का विस्तार कर उन्हें सुनाया तो उन्हें जो अपार आनन्दानुभव हुआ उसका वर्णन करना ही कठिन है। वे तो महान थे ही, श्रेष्ठ वाग्गेयकार के रूप में भी प्रतिष्ठित थे, परन्तु उन्होंने अनायास मुझमें जो प्रेरणा, उत्साह एवं नवोन्मेष का संचार कराया वह शब्दातीत है।

पू. अण्णासाहब का संगीत और उनका व्यक्तित्व स्वयं में एक उदात्त सन्देश लिए हुए मुझे सदैव ही प्रतीत हुए कि कलाकार को एवं उसके संगीत को न केवल सुन्दर का, अपितु सत्य और शिव का भी प्रतीक होना चाहिए। संगीत को मात्र प्रेयस् नहीं वरन् श्रेयस् गुण से युक्त होना चाहिए।

पू. अण्णा के संगीत से तथा उनके देवतुल्य सान्निध्य से मुझे सदा ही यह अनुभूति हुई कि हमारा भारतीय संगीत वस्तुतः रंग भवन में या सभामण्डप में ही प्रस्तुत होनेवाला मनोरंजन का सतही साधन नहीं, वरन् मन्दिर में देवोपासना का पवित्र माध्यम है। हमारे संगीत का वास्तविक धरातल भौतिक नहीं, आध्यात्मिक है। संगीत केवल स्वरों का खेल नहीं वह नादब्रह्म की शाश्वत आराधना है, उपासना है।

–प्रो. मंजु सुंदरम्
प्रोफेसर इन म्यूझिक, बेजंट कॉलेज बनारस

रातंजनकरजी का स्व-भाव-दर्शन

(षष्ठिपूर्ति संस्मरण)

डॉ. रातंजनकरजी से मेरा कई वर्षों का स्नेहसंबंध है। मुझे स्मरण है कि कई साल पहले उनके संगीत-प्रेमी पिता के यहां गायन के सिलसिले में मैं दो-एक बार गया था। उस वक्त रातंजनकरजी की आयु कम थी। उनके विषय में प्रशंसापर उल्लेख कई बार सुनने में आता था।

कुछ वर्ष पहले डॉ. रातंजनकर जब दो-एक बार धार आए थे, उनका पर्याप्त सान्निध्य मुझे

प्राप्त हुआ था। उनके गायन की साथ-संगत भी मैंने की थी। ग्वालियर के गायनाचार्य श्री राजाभैया पूछवाले परीक्षा लेने के सिलसिले में कई बार धार आ चुके थे। श्री रातंजनकरजी से उनके कई वर्षों के निकट के स्नेह-संबंध थे। मुझे याद है कि एक दिन हम तीनों ने मिलकर संगीत के विषय में चर्चा की थी। कारणवशात् मेरा एवं श्री रातंजनकरजी का पत्राचार चलता रहता है, जिसका विषय प्रमुखत: संगीत ही होता है। हमारे बीच कुछ मतभेद रहे भी हों, तो भी वे हमारे स्नेहसंबंध में कभी बाधक नहीं हुए। यदि स्पष्टवादिता को दोष माना जाए तो वह मुझमें है। यह दोष जिन्हें मान्य है उनके और मेरे स्नेहसंबंध को कभी आघात नहीं पहुंचता है। मैं अविरोध मित्रता न किसीसे कर सका हूं, न कर सकूंगा। अजातशत्रु मानव-प्राणी का अस्तित्व हो तो वह मुझे ज्ञात नहीं है। कहने का मतलब यह कि मेरे प्रति डॉ. रातंजनकर के लोभ में कुछ रोष का भी अंश हो।.....

डॉ. रातंजनकर के स्वभाव के गुणदोषों को परखकर उनसे बर्ताव किया जाए तो दोनों की अच्छी निभती है। उनके व्यक्तित्व के कोमल स्थानों को दुखाने न देने की सावधानी बरतनी पड़ती है। एक बार यह साध्य हो जाए, तो फिर उनके साथ मिल जुलकर रहा जा सकता है, उनका खुले दिल का सान्निध्य प्राप्त किया जा सकता है। ऐसे अवसर पर मैंने उन्हें बेशुमार हंसाया भी है। ऐसे संयोग बार बार जुड़ जाते तो हमारे मतभेद समझौते की स्थिति में आ सकते और एक दूसरे को प्रसन्नता भी प्राप्त होती वह अलग।

डॉ. रातंजनकरजी के साथ मेरा स्नेहसंबंध स्थापित होने में विशेषत: संगीत विषय ही कारण बना है। मेरा मुख्य व्यासंग शिल्पकला का होने पर भी संगीत के प्रति मुझे अत्यंत लगाव है। अलावा इसके मूल तत्त्व भी अभिन्न ही हैं। डॉ. रातंजनकर मार्मिक रसाग्रही होने के कारण, मेरी राय में, वे दुराग्रही नहीं होंगे।

संगीत विषय ही ऐसा है कि जिसके बारे में कोई मतभेद हुआ ही करता है। श्री रातंजनकरजी का विरोधी पक्ष भी है। किंतु तथ्य की बात यह है कि डॉ. रातंजनकर की एकनिष्ठ संगीत-भक्ति और इस भक्ति के द्वारा उनके संपन्न किए हुए विविध कार्य गौरवास्पद सिद्ध होते हैं। मैं उनसे उम्र में बहुत बड़ा होने से उनकी षष्टचब्दिपूर्ति के प्रसंग में शुभाशीर्वाद देने के मेरे जन्मसिद्ध अधिकार को ध्यान में रखकर मैं अत्यंत मन:पूर्वक उनका अभीष्ट चिंतन करता हूं।

– पद्मश्री र. कृ. फडके
कलामहर्षि शिल्पकार
संगीत-साधक, समीक्षक - धार (म.प्र.)

अण्णासाहब का श्रुतिगायन

(षष्ठिपूर्ति संस्मरण)

लगभग १८ वर्ष पहले पं. रातंजनकर साहब के ४-५ गाने उनके विषय में चर्चा के साथ सुनने का संयोग मुझे प्राप्त हुआ था। उनके ये सभी गाने विद्वान कलाकारों की महफिल के अनुरूप ही श्रेष्ठ स्तर के थे। उन महफिलों के माध्यम से केवल दो तानपूरों के प्रशांत झंकार में भिन्न भिन्न रागों में स्वरों की श्रुतियाँ कैसे प्रयुक्त होती हैं उसको उन्होंने केवल संबधित स्वरों

पर नहीं, बल्कि श्रुति पर रुककर गाकर दिखाया। यह कार्य संभवत: किसी पहुँचे हुए तंतकार द्वारा ही संपन्न हो सकता है, किंतु एक गायक द्वारा बड़े अधिकरपूर्वक इसका प्रस्तुतीकरण पं. रातंजनकरजी की श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है। जहांतक मेरी जानकारी है, इस प्रकार की सिद्धि प्राप्त किया हुआ पं. रातंजनकर के सिवा कोई दूसरा कलाकार नहीं है। उनके गाने का सुसूत्र नोम् तोम् प्रकार भी उतना ही अविस्मरणीय है। उनके गायन में प्रमुखत: सुसूत्रता, शास्त्र एवं कला के सुयोग्य संगम और चिंतनशीलता के दर्शन होते हैं। उनकी गायनकला एवं आचार-विचार के उपर्युक्त गुणसमुच्चय के ही फलस्वरूप वे एक श्रेष्ठ संगीत-शिक्षक के रूप में ख्यातनाम हैं। आजके विद्वान संगीत-शिक्षकों में पं. रातंजनकर का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं श्रेष्ठ है। उनके अनेक नामवर शिष्यगण भारतभर में सुप्रतिष्ठितता के साथ कार्य कर रहे हैं। पं. रातंजनकर के श्रेष्ठ अध्यापन-कौशल की यह एक समर्थ निशानी ही है। गीतकार की हैसियत से भी पं. रातंजनकर का स्थान श्रेष्ठ ही मानना पड़ेगा। उन्होंने अनेक उत्तमोत्तम बंदिशें बनाई हैं। रागुशद्धता, सौंदर्यवत्ता, व्याकरणदृष्टि और उसका ताल अंग आदि की दृष्टि से उनकी न जाने कितनी बंदिशें श्रेष्ठ स्तर की सिद्ध हुई हैं। उन्हींकी रची हुई 'पंचम' राग की 'आवो गावो गावो रिझावो' जैसी एकाध बंदिश भी नमूने के तौर पर ली जाए, तो भी पं. रातंजनकर की बंदिशों का अनोखा स्तर एवं उसकी विशेषता किसीके भी ध्यान में आ सकती है।

– स्व. ना.र. मारुलकर
महाराष्ट्र के मान्यताप्राप्त
गायक-वादक गुरु एवं शोध-कर्ता समीक्षक

पद्मभूषण डॉ. श्रीकृष्ण नारायण रातंजनकर

(षष्ठिपूर्ति संस्मरण)

डॉ. रातंजनकर से मेरा बहुत पुराना परिचय न होने पर भी मैं उन्हें कई सालों से पहचानता आया हूँ। किन्तु इन १०-१२ वर्षों में उनसे मेरा प्रत्यक्ष परिचय हुआ। जब वे मैरिस कॉलेज के प्रिंसिपल थे, तब लखनौ में रेड़ियो कार्यक्रम के लिए मेरा गाना हुआ और वहीं उनसे मेरा दृढ़ परिचय हुआ। मैंने कॉलेज भी देखा। कॉलेज के पास ही के एक हॉल में मेरा गाना हुआ। तब प्रिं. रातंजनकरजी ने श्रोताओं से मेरा परिचय कराते हुए मेरी गायन-सेवा का भी अच्छे शब्दों में वर्णन किया।

स्व. पं. भातखण्डेजी ने संगीत-शास्त्र एवं उसकी शिक्षण-पद्धति तथा उसके अनुभवों का, शिक्षा के द्वारा पं. रातंजनकर को बड़ा लाभ प्रदान कर दिया, मेरी यह दृढ़ धारणा है कि इस विषय में डॉ. रातंजनकरजी का बहुत उत्कृष्ट अध्ययन होने से उन्हें जो मान-सम्मान प्राप्त हुआ वह उनके द्वारा संपन्न संगीत-सेवा का ही फल है। संगीत की शिक्षा के प्रचार का जो कार्य उनके हाथों संपन्न हुआ वह सचमुच प्रशंसनीय है। गायकी के और वादकों के अलग अलग घराने हैं। अपने-अपने उन घरानों के प्रति हर एक को अभिमान एवं आदर होना स्वाभाविक ही है। यदि घराने की पद्धति एवं परंपरा को हमने भुला दिया तो वह बड़े अन्याय की बात

होगी इतना इस परंपरा का महत्त्व है। यही लक्ष्य डॉ. रातंजनकरजी ने अपने सामने रखा और उससे वे चिपके रहे, यह बात उनके लिए अत्यंत भूषणावह है। यहां मैं यह सदिच्छा व्यक्त करता हूँ कि ईश्वर डॉ. रातंजनकर को दीर्घायुरोग्य प्रदान करे और उनके द्वारा भविष्य में संगीत की निरंतर सेवा होती रहे।

– मास्टर कृष्णराव फुलंब्रीकर, पुणे
पं.भास्करबुवा बखले के प्रधान शिष्य,
विख्यात महफिली गायक और वाग्गेयकार

संगीत की बृहत्त्रयी में स्थान के अधिकारी

स्व. अण्णासाहब रातंजनकरजी मेरे लिए गुरुतुल्य हस्ती हैं। १९५८-५९ में डॉ. श्रीमती मुटाटकर के यहां उनके दर्शन का अवसर मुझे मिला था। महान भारतीय संगीतज्ञ डॉ. रातंजनकर उच्च कोटि के कवि-नायक थे।

स्व. पं. विष्णु नारायण भातखंडेजी के प्रचंड कार्य के उपरान्त उत्तम ही स्तरीय कार्य अण्णासाहब ने कर दिखाया। संगीत की शिक्षा के लिए उपयुक्त उत्कृष्ट पाठ्यक्रम तैयार करके, बहुमूल्य बंदिशों की रचना करके तथा अनेक ऊंचे शिष्यों का निर्माण करके आपने संगीत की अपार तथा अनमोल सेवा की है। इस संदर्भ में आचार्य पं. विष्णु दिगंबर तथा आचार्य पं. भातखंडे के साथ अण्णासाहब रातंजनकर का नाम लेना होगा।

– पं. त्रिं. द. जानोरीकर, पुणे
भेंडी बाजार घराने के श्रेष्ठ गायक एवं गुरु

संगीत और नवरस

स्व. अण्णासाहब कभी जोधपुर विश्वविद्यालय के संगीत पाठ्यक्रम के कलासंकाय के सदस्य के रूप में यहां आते रहे और बराबर हमारे यहां ही ठहरते थे। अत: उनसे निकटता का संपर्क बढ़ता गया। उनमें आत्मसम्मान कूट-कूटकर भरा था। एक बार स्व. काबराजी के यहां से उनके लिए बुलावा आया, पर उन्हें लेने वे स्वयं नहीं आए। अण्णासाहब ने क्षमा मांग ली।... एक बार मैंने उनसे पूछा कि क्या संगीत में साहित्य की तरह नवरसधारणा संभव है? काफी सोच-विचार के बाद निष्कर्ष निकला कि किसी भी हालत में नहीं। फिर भी लेख छपते रहते हैं कि संगीत में शृंगार, वीर, करुण, शांत रस तो प्रकट हो सकते हैं, पर भयानक, बीभत्स आदि नहीं। रससिद्धान्त से ये लोग सर्वथा अनभिज्ञ हैं।

– डॉ. नागरमल सहल, जोधपुर
विद्वान संगीत रसिक

गुणग्राहकता और संगीत-साधना का संयोग

कुछ वर्ष पहले की बात है। 'श्रीवल्लभ संगीतालय' की ओर से पं. भातखंडे, पं. पलुस्कर की संयुक्त पुण्यतिथि के उपलक्ष्य में संपन्न होनेवाले कार्यक्रम में मुझे गाने के लिए आमंत्रित किया गया था। जहां तक मुझे याद है, उस समय मैंने एक ख्याल और उसके बाद टप्पा गाया था। इस कार्यक्रम में पं. रातंजनकरजी उपस्थित थे। यमन सुनकर वे अत्यंत प्रभावित हुए और ग्वालियर परंपरा की गायकी के प्रति अपना आदर व्यक्त करने के लिए मेरा आगे का गाना सुनने वे सभागृह के अपने आसन को छोड़कर अचानक मंच पर आकर विराजमान हुए। कार्यक्रम के समाप्त होते ही उन्होंने मुझे कसकर गले लगाया और स्वयंस्फूर्ति से दाद दी। यह उनकी रसिकता एवं गुणग्राहकता का मानो प्रतीक ही था। उनसे फिर कभी मिलने की मेरी इच्छा थी, किन्तु दुर्भाग्य से अगले ही वर्ष पं. रातंजनकरजी का निधन हुआ और फलत: उसी सभागृह में उनकी शोकसभा में उपस्थित रहने की बारी मुझपर आ गई।

मैं अपने गुरु पंडित एकनाथ पंडित के पास जब तालीम पा रहा था, तब गाने के विषय में अनेक ऐसी बोधप्रद बातें सुनने को मिलती थीं जो मेरे अध्ययन के लिए उपादेय हुआ करती थीं। पं. भातखंडेजी ने गुरुजी का गंडा बँधवाने के उपरान्त अण्णासाहब को अर्थात् पं. रातंजनकरजी को गुरुजी से तालीम लेने के लिए भेजा था। उस समय यमन की 'जियो करो कोट' ख्याल की तालीम भी शुरू हो गई। किन्तु लगता है कि एकनाथजी का वास्तव्य बंबई में स्थायी रूप में न होने से आगे चलकर शायद तालीम का संयोग नहीं जुड़ा होगा। तत्पश्चात् पं. कृष्णराव पंडित के पास भी शिक्षा लेने के बारे में पूछताछ की गई थी किन्तु यह संयोग भी नहीं जुड़ा।

–पं. शरच्चंद्र आरोळकर, बम्बई
ग्वालियर घराने के बुजुर्ग गायक, आचार्य
कृष्ण शंकर और एकनाथ पंडित के शिष्य

मैरिस कॉलेज का माहौल

(स्व. कृष्णराव मुजुमदार, इन्दौर से डॉ. सुशीला पोहनकर ने बातचीत की थी उसका सारांश)

लखनऊ के मैरिस कॉलेज में मैंने तीन वर्ष तक संगीत का अध्ययन किया। अण्णासाहब के पास सीखने का अवसर मुझे मिला। वहां सर्वश्री दंताळे, चिंचोरे, चिदानंद, वी.जी. जोग, भट, गिंडे, नातूसाहब सभी से परिचय हुआ।

अण्णासाहब के पढ़ाने के बारे में बताना हो तो वे बड़े ही अनुशासनप्रिय थे। गाने में भूल होती हो तो गुस्सा न करते; लेकिन बार बार कहलवाते थे। रागों की प्रस्तुति, सुरों के लगाव, साधर्म्य रखनेवाले रागों के भिन्न भिन्न रूप बहुत सुंदर ढंग से समझाते। शिष्यों से उनका पुत्रवत् प्रेम था। कइयों को उन्होंने कॉलेज में ही रहने के लिए जगह दी थी। वे वहां अकेले रहते थे। अत: शिष्यगण, कलाकार मित्र यही उनका परिवार था। आठों पहर स्वरों का साम्राज्य रहता। जहां तहां तानपूरों की गुंजार, शिष्यों का रियाज, उसमें अण्णासाहब का स्वर सब गूंजता रहता था। गुरु-शिष्य परंपरा का परिदृश्य वास्तविक रूप में वहां देखने को मिलता।

अण्णासाहब की विद्वत्ता, रागों का गहरा ज्ञान, स्वर-लय पर प्रभुत्व सब अब भी याद आता

है। वे जैसे विद्वान शिक्षक थे, वैसे ही उत्कृष्ट गायक भी थे। वे शिष्यों में कभी भेद-भाव न करते थे। उन्हें मालूम था कि मैं रजबअली खांसाहब का शागिर्द हूं। लेकिन कभी उन्होंने मेरे साथ दूरता नहीं बरती। महफिल के लिए मुझे अपने साथ ले चलते। मौका रहने पर मुझे गाने के लिए बिठाते...

कृष्ण मुजुमदार
इंदौरनिवासी जानेमाने गान-साधक, मैरिस कॉलेज के छात्र

पं. भातखंडेजी का प्रतिरूप

(पं. निवृत्तिबुवा सरनाईक से डॉ. के.जी. गिंडे की बातचीत)

अण्णासाहब रातंजनकरजी से मेरा परिचय पुराना था। उन्होंने संगीत की जो सेवा की, वैसी और किसीने नहीं की होगी। उन्होंने लगभग छः सौ बंदिशों की रचना की है और सभी बंदिशें उच्च स्तर की हैं। प्रत्येक स्वर पर उन्होंने गहराई से विचार किया था। उन्होंने अपनी षष्ठिपूर्ति में मुझ जैसे सामान्य कलाकार को स्वयं निमंत्रित करके अपनी उदारता का परिचय दिया था।

रेड़ियो ऑड़िशन के विरोधी आंदोलन में अपनी तरफ से मैं शामिल नहीं हुआ था। लेकिन लोगों ने मुझे एम्पायर होटेल (माटुंगा) में रोकके रखा। मुझे घर जाने ही नहीं दिया। लेकिन मैं कहता हूं कि अण्णासाहब ने ऑडिशन के बारे में जो किया वह अच्छा ही किया। उसकी तारीफ आज हो रही है। वरन् दिनकर कैकिणी से मैं कहूं कि भैया, हम आए हैं और वह कह देगा, "तुम तो पास ही हो।" ऐसी हालत हो जाती। इसका जो विरोध हुआ वह बड़े बड़े गायकोंने किया। वे गानेवाले बड़े थे किंतु उनके पास गाने की जानकारी नहीं थी। केसकरसाहब सोचते थे कि गायकों में ज्ञान की कमी नहीं रहनी चाहिए। किसीका अपमान करने का उनका इरादा नहीं था।

अण्णासाहब ने सच्चा विद्यादान किया। शिष्यों को संपूर्ण दृष्टि से विद्या सिखाई। बंदिशें परिपूर्ण रूप में बताईं, उनके अर्थ के साथ। ज्ञान के बारेमें तो मैं उन्हें भातखंडेजी का ही एक संस्करण मानता हू। (डॉ. गिंडे को उद्देश्य करके) "गिंडेसाहब, आप और आपके सहयोगी कितने भाग्यवान हैं कि आप लोग अण्णासाहब के निकट पहुंच सके। और खासकर आप भी हमारी पीढ़ी के एक सच्चे पंडित हैं। आपके जितना इल्म और याददाश्त बहुत कम साधकों में मिल सकती है। आप सब शिष्यों पर गुरु की कृपा है। अण्णासाहब के शिष्य आप और भट, कायकिणी आदि का गाना सुनने पर यह महसूस होता है कि यह पुस्तक का रटा हुआ गाना नहीं, असली गायन है। अण्णासाहब का यह बड़ा कार्य है।"

– पं. निवृत्तिबुवा सरनाईक
अत्रौली, जयपूर घराने के विख्यात गायक, संगीत रिसर्च अकादमी, कलकत्ता में प्राध्यापक

रागरंग के गायक

मेरे विचार में इस सदी के सबसे श्रेष्ठ ख्यालगायक उ. फैय्याज हुसेन खांसाहब ही थे और उनकी झलक मिलती थी आचार्य रातंजनकरजी में। कभी कभी जब रातंजनकरजी छोटे से कमरे में १०-१२ लोगों की बैठक में गायन प्रस्तुत करते थे तो सभी को भावविभोर कर देते। परिश्रमी एवं लगनभीने आचार्य रातंजनकरजी राग-रंग के गायक थे, राग-जंग के नहीं। परंतु उनपर मैरिस कॉलेज के बोझ के कारण ही वे गायक कलाकारों की भांति कभी संगीत-सम्मेलन के मंचपर नहीं गा सके। एक विचित्र बात यह थी कि बहुत मधुर एवं मोहक आवाज होनेपर भी उस समय के माईक्रोफोन उनकी आवाज को ठीक ठीक नहीं पकड़ पाते थे; यह बात उनके ग्रामोफोन रिकार्ड को सुनते ही स्पष्ट होती है।

ख्यालगायन की विशेषता है सुंदर तथा भावपूर्ण स्थायी गायन। रातंजनकरजी में भावपूर्ण स्थायी गाने की अनूठी कला थी। एक बार उनसे निम्नलिखित गौड़ मलार की स्थायी सुनी थी और वैसा गायन किसी और से आजतक सुना नहीं। ख्याल था- 'जानी जानी तुम्हरे मन की सब जानी, बात पियरवा, जाओ हमें न समझाओ। अब बस करो अपनी मेहेरबानी।....' रातंजनकरजी ने गीत के एक एक भाव को रागद्वारा ऐसा चमत्कारिक ढंग से गाया कि १९४० का सुना गायन आज १९९० में भी याद आने पर कानों में गूंजकर मेरे मन को कहीं दूर ले जाता है।..... रातंजनकरजी की मुसकान तथा उनकी आंखों की चमक आज भी अच्छी तरह याद है।

– जी.सी. उप्रैती

सरसावा (सहरानपुर), ऊंचे संगीतप्रेमी;
उन दिनों मैरिस कॉलेज से संपर्क रखनेवाले।

'विभास' की धैवत और गायन का करिश्मा

श्रीमान अण्णासाहब सिखाते समय राग में लगनेवाले स्वर-स्थान पर विशेष ध्यान देते थे। इसका एक उदाहरण मेरी स्मृति में अच्छी तरह है। दूसरे साल हम लोग भैरव के प्रकार सीख रहे थे। राग जोगिया सीखने के बाद राग विभास शुरू हुआ। इस राग में कोमल धैवत का एक विशिष्ट स्थान है, जो कि अन्य रागों में, प्रयुक्त होनेवाले धैवत से भिन्न है। यह विशिष्ट स्थान का धैवत ठीक से आने के लिए पूरे दो महीने लगे। उसका कारण यह था कि अकेले गानेपर स्वर-स्थान ठीक लगते थे। परन्तु और विद्यार्थियों के साथ गानेपर किसी अन्य विद्यार्थी का धैवत जरा-सा ऊंचा होने पर हम लोग भी उसमें मिल जाते थे, और राग विभास का वह रूप बिगड़ जाता था, तत्पश्चात् श्री अण्णासाहब स्वयं गाकर ठीक करा देते थे। सन १९३६ के दिसंबर में लखनऊ में औद्योगिक प्रदर्शनी उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा चौक में आयोजित की गई थी। इस प्रदर्शनी में शिक्षा, सांस्कृतिक विभाग तथा अखिल भारतीय संगीत परिषद (कॉन्फ्रेन्स) का भी आयोजन था। उस समय के देश के उच्च कलाकार भिन्न भिन्न प्रांत तथा रियासतों से (States) आए थे। यह परिषद पूरे पांच दिन चली थी। इनमें ध्रुपद-धमार गायक, ख्याल, ठुमरी, टप्पा शैली के गायक, तथा सितार, सरोद, विचित्र वीणा, मृदंग, तबला आदि

के वादक और कथक नृत्य के कलाकारों ने भाग लिया था। उस समय के उच्च गायक-वादक उस्ताद फैयाजखां, उ. नासिरुद्दीनखां (इंदौर), उस्ताद हाफिजअलीखां, उ. नासिरुद्दीनखां (कच्छ), उ. अल्लाउद्दीनखां इत्यादि प्रमुख कलाकारों ने भाग लिया था।

संगीत-सभा के दूसरे दिन रात दो प्रमुख कार्यक्रम थे। उस्ताद नासिरुद्दीनखां (कच्छ) का ध्रुपद धमार गायन तथा उ. फैयाजखां का ख्याल गायन। बाकी एक नृत्य तथा बेला-वादन।

उ. नासिरुद्दीनखां साहब का कार्यक्रम लगभग ८ बजे शुरू हुआ। उन्होंने नोम् तोम् इतनी अच्छे ढंग से की जिससे उपस्थित गायक, वादक और संगीत-प्रेमी जनता गायन सुनकर मुग्ध हो गई। ध्रुपद धमार में लयकारी से लोग झूमने लगे। इसके बाद एक छोटा-सा नृत्य का कार्यक्रम था और उसके बाद उ. फैयाजखांसाहब का कार्यक्रम था। नृत्य का कार्यक्रम शुरू होते ही उ. फैयाजखांसाहब की साज मिलाने के लिए खोज शुरू हुई, परन्तु वे पंडाल में नहीं थे। वे नृत्य शुरू होने के साथ ही श्री चौबे के साथ चले गए थे। मैंने यह कहते हुए सुना था कि "चौबे जल्दी चलो, आज हम नहीं गाएंगे।" मैंने यह सूचना श्री अण्णासाहब के पास पहुंचाई, और उन्होंने कहा कि श्री नातूजी से कहो कि तानपूरे मिलाए एवं सदाशिव से तबला मिलाने के लिए कहो।

नृत्य का कार्यक्रम समाप्त होने के बाद स्टेजपर तानपूरे रखे गए, और अण्णासाहब ने स्टेजपर बैठकर अपना गायन नोंम् तोंम शुरू की जो उ. फैय्याजखांसाहब की याद दिला रही थी। पूरे दो घंटों तक गायन चलता रहा और गायक, वादक तथा जनता मंत्रमुग्ध हो गई। लोग यह भी भूल गए कि उस्ताद फैय्याजखां का कार्यक्रम था। उस दिन का कार्यक्रम मेरे लिए चिरस्मरणीय था।

– श्री शं. र. आळेकर

माधव संगीत विद्यालय के स्नातक, कुछ
काल अण्णासाहब से शिक्षा; आज रजिस्ट्रार
भातखंडे संगीत विद्यापीठ, लखनऊ

दिव्य निःस्पृहता एवं श्रद्धालुता

घटना इ.स. १९३९ की है। मैं उस समय भातखंडे संगीत विश्वविद्यालय, लखनऊ में तृतीय वर्ष अर्थात् 'इंटरमिजिएट इन म्यूजिक' का विद्यार्थी था। 'संगीत विशारद' के बाद की अधिकृत कक्षाएं उस समय विश्वविद्यालय में लगती नहीं थीं; परंतु प.पू. गुरुवर अण्णासाहब उन कक्षाओं को विधिवत् चालू करने हेतु प्रातः दो घंटे कुछ प्रतिभावान विद्यार्थियों को संगीत सिखाते थे। उस कक्षा में मेरे पू. गुरु भटसाहब, सुविख्यात तबलावादक श्री. व्ही. जी. जोग, प्राध्यापक मु.वि. काळविट, 'संगीत' मासिक पत्रिका के भूतपूर्व संपादक श्री. महेश नारायण सक्सेना आदि संगीत की शिक्षा ग्रहण करते थे। इस सुअवसर का लाभ उठाने हेतु 'चतुर संगीत विद्यालय' नागपुर के प्राचार्य श्रीयुत निस्ताने अध्ययन अवकाश प्राप्त कर एक शैक्षणिक सत्र के लिए लखनऊ आए थे। गुरुवर्य अण्णासाहब से वे विशेष परिचित नहीं थे। अतः वे बड़े आग्रह के साथ मुझको अपने साथ विशेष परिचय कराने एवं श्री निस्तानेजी का लखनऊ आने का प्रयोजन कथन करने हेतु गुरु अण्णासाहेब के पास ले गए।

अपने प.पू. गुरुवर्य भटसाहब के पास छात्र-निवास में संगीत अध्ययन हेतु मैं प्रतिदिन ही जाया करता था और ऋषितुल्य जीवन व्यतीत करनेवाले हमारे गुरु अण्णासाहब उसी भवन के एक कक्ष में रहा करते थे, अत: मुझे भली भांति जानते थे।

मैं श्री निस्तानेजी को गुरु अण्णासाहेब के पास ले गया और उनका परिचय एवं लखनऊ आने का प्रयोजन भी उनसे कथन किया। श्री निस्तानेजी अपने साथ गुरुवर्य को उपहार स्वरूप देने के लिए सुप्रसिद्ध उमरेड की एक कीमती धोती लाए थे। मैंने श्री निस्तानेजी को पहले से कहा था कि "गुरुवर्य एक अत्यंत त्यागी एवं नि:स्पृह ऋषि हैं, वे आपका कोई भी उपहार अथवा गुरुदक्षिणा स्वीकार नहीं करेंगे वे अपत्यवत् प्रेम करके विद्यादान करने में अपने जीवन का साफल्य समझते हैं।"

हुआ प्रत्यक्ष वैसा ही। श्री निस्तानेजी की भेंटस्वरूप दी हुई धोती उन्होंने लेनेसे स्पष्टत: इन्कार कर दिया। श्री निस्तानेजी की आंखों से आंसू छलकने लग गए। परंतु गुरु अण्णासाहब अपने सिद्धान्त से तिलभर भी विचलित हुए नहीं और बड़े ही स्नेह से कहा, "कल से प्रात:कालीन कक्षा में आया कीजिए"।

हम दोनों गुरुवर्य के कक्ष से बाहर आ गए। दो मिनट तक तो कोई एक दूसरे से बोल ही न सका। श्री निस्तानेजी ने केवल इतना ही कहा, "मूर्ति छोटी परंतु कीर्ति बहुत ही बड़ी है, मैंने आजतक ऐसा नि:स्पृह और विद्यादान में तत्पर किसी को भी नहीं पाया।"

आगे श्री निस्तानेजी सालभर उस कक्षा का विनामूल्य लाभ उठाकर तृप्त होकर वापस नागपुर आए।

घटना १९४० 'रक्षाबंधन' के दिन की है। इस दिन ब्राह्मण, जिनका उपनयन-संस्कार (जनेऊ) हुआ है, अपना यज्ञोपवीत बदलकर विधिवत् दूसरा नया यज्ञोपवीत धारण करते हैं। इस विधि को महाराष्ट्र में 'श्रावणी' कहते हैं।

उपरोल्लिखित श्रावणी के एक दिन पूर्व ही प.पू. गुरुवर्य अण्णासाहब ने मुझको 'श्रावणी' के दिन प्रात: ९ बजे उनके पास उपस्थित होने का निमंत्रण दिया था।

निमंत्रण के अनुसार मैं उनके पास उपस्थित हो गया। सस्मित उन्होंने कहा, "आइए, बैठिए"

मुझको अकेले को ही निमंत्रित करने का कारण मैं जानता नहीं था। मेरा मन कारण की खोज में अंदर ही अंदर भटक रहा था कि गुरुजी हाथ में मिठाई की तश्तरी लेकर पधारे। मैं उन्हें उत्थान देने हेतु उठ खड़ा होने लगा तो कहने लगे, "ब्राह्मण देवता, आज हम आपका सम्मान करेंगे, आज 'श्रावणी' है। मेरे पू. पिताजी ने मेरा उपनयन-संस्कार किया है। आज विधिवत् मुझे यज्ञोपवीत धारण करना है।"

इतना कहकर उन्होंने यज्ञोपवीत धारण कर लिया और मिठाई की तश्तरी सविनय मेरे हाथ धरवाकर मुझे झुककर नमस्कार किया।

वह मेरे गुरु और मेरे दादागुरु (प.पू. गुरु भटसाहब के वे गुरु हैं और मैं गुरु भटसाहब का विद्यार्थी) भी हैं। वितानवत् व्यक्तित्व की यह विनयशीलता, ब्राह्मण एवं ब्राह्मण्य के प्रति समादर उनमें पाकर श्रद्धा से उनके प्रति कौन नतमस्तक न होगा? मेरा और उनका नाता ध्यान में रखकर उनका मुझको झुककर नमस्कार करने का मुझपर क्या परिणाम हुआ होगा इसकी कल्पना पाठक कर सकते हैं। मैं तो एकदम स्तम्भित ही हो गया।

मुझ जैसा अति सामान्य व्यक्ति अंतरिक्ष से टक्कर लेनेवाली उनकी महानता का अनुमान ही नहीं लगा पाता। छोटी-सी कृति में उनकी कितनी बड़ी महानता छिपी है!

डी. जी. फड़के
भातखंडे सं. विद्यापीठ के स्नातक,
भूतपूर्व प्राध्यापक, वनस्थली

श्रद्धेय गुरुवर्य अन्नासाहिब

सन १९६० में 'भातखण्डे संगीत विद्यालय' द्वारा आयोजित रिकार्डिंग में मुझे अन्नासाहिब के साथ तानपूरा बजाने व आवाज लगाने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इस रिकार्डिंग के प्रारम्भ में राग वर्णन, विस्तृत आलाप, धमार, विलम्बित ख्याल, एवं द्रुत ख्याल का गायन अन्नासाहिब ने विस्तृत रूप से किया है। सन १९६६ में उत्तर प्रदेश सरकार ने भातखंडे संगीत महाविद्यालय का अधिग्रहण किया। उ. प्र. शासन के अनुरोध पर फरवरी सन १९६७ में एक बार पुनः अन्नासाहिब 'भातखंडे संगीत महाविद्यालय' लखनऊ के प्रधानाचार्य के पद पर आसीन हुए और महाविद्यालय उनके मार्गदर्शन में प्रगति की दिशा में अग्रसर हुआ और लगभग तीन वर्ष तक वे प्रधानाचार्य पद पर कार्यरत रहे। मुझे इन तीन वर्षों में उनसे शिक्षा प्राप्त करने एवं उनको निकट से देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ। अन्नासाहिब की दिनचर्या ऋषि मुनियों के समान थी। पूरा दिन पठन, पाठन व अध्ययन में व्यतीत होता था। दिन में वे कभी नहीं सोते थे, रात्रि में प्रायः तीन चार घण्टे से अधिक नहीं सोते थे। संगीत विषय के अतिरिक्त अन्य किसी विषय पर कोई बात नहीं करते थे। परीक्षासम्बन्धी गोपनीयता में अत्यधिक सतर्कता बरतते थे। कोई भी परीक्षा सम्बन्धी प्रपत्र बाहर अपने कक्ष में मेज आदि पर नहीं रखते थे। बल्कि एक लोहे के ट्रंक में ताला लगाकर रखते जिसकी चाबी उनके जनेऊ में बंधी रहती थी।

महाविद्यालय की ग्रीष्मकालीन एवं शीतकालीन अवकाश में प्रायः वे अपने घर बम्बई जाते थे और लौटने पर एक डायरी में विविध व्यंजन बनाने की विधियां लिख लाते थे। प्रत्येक इतवार को प्रातः शिक्षा प्राप्त करने हेतु मैं उनके पास जाता था और प्रायः उन्हींके साथ भोजन भी करता था। अधिकतर इतवार को वे कोई न कोई नया व्यंजन अपनी देख-रेख में रामा से बनवाया करते थे। भोजन के पश्चात् उक्त व्यंजन बनाने की विधि डायरी से पढ़कर सुनाते थे।

उनमें संगीत सम्बन्धी अलौकिक प्रतिभा थी। संगीत सम्बन्धी शास्त्र एवं रागों के उत्तर देने में उन्हें तनिक भी सोचना नहीं पडता था। कठिन से कठिन रागों के रास्ते वे इतनी सरलता से समझाते थे कि वे तुरन्त समझ में आ जाते थे। एक बार उन्होंने एक नवीन राग 'मालव मंजरी' राग का सृजन किया और उसमें पंजाबी में एक रचना 'हो मेडा साई' का निर्माण किया और उसी समय मुझे उसकी शिक्षा दी एवं अपने हाथों से स्वरलिपि बनाकर मेरे सामने रख दी और मुझसे कहा कि आज मैं यह रचना 'छोटू' के पास बम्बई भेज रहा हूँ इसका द्रुत ख्याल वहां से बनकर आएगा। लगभग बीस-पच्चीस दिन के पश्चात् बम्बई से गिण्डेजी ने द्रुत ख्याल सृजित कर अन्नासाहिब को भेज दिया। उन्होंने तुरन्त मुझे बुलाकर गाकर सुनाया और कहा कि जैसी रचना मैं चाहता था ठीक उसीके अनुरूप यह रचना बनकर आई है और

प्रसन्नता से उनका चेहरा गद्‌गद् हो गया। कहने लगे छोटू एक मात्र मेरे ऐसे शिष्य हैं जो मेरे सूक्ष्मात्मक भावों को समझते हैं। जो मैं अन्दर से चाहता हू वह वैसी ही रचनाओं का निर्माण करते हैं। इस प्रकार अन्नासाहिब और श्री के. जी. गिण्डे में संगीत की आत्मिक तारतम्यता थी।*

अन्नासाहिब अपने दैनिक व्यय आदि को एक डायरी में नोट करते थे। प्राय: उनके रेल्वे के आरक्षण आदि की व्यवस्था मैं ही करता था। कभी कभी खुले पैसे न होने के कारण दस पैसे, पन्द्रह पैसे का हिसाब उनकी ओर रह जाता था तो दूसरे दिन महाविद्यालय में आने पर वे अपने प्रधानाचार्य कक्ष से निकलकर, सीढ़िया चढ़कर प्रथम तल पर स्थित मेरे कक्षमें स्वयं आकर वे दस अथवा पन्द्रह पैसे लौटाते थे। मुझे बहुत आश्चर्य होता था और प्राय: मैं उनसे कहता था कि यह दस पैसे लौटाने की क्या आवश्यकता थी, और यदि लौटाने ही आवश्यक थे तो मुझे अपने कक्ष में बुला लिया होता अथवा चपरासी के हाथ भेज दिए होते। उस पर उनका उत्तर होता था कि यह मेरा व्यक्तिगत कार्य है अत: मुझे स्वयं आना चाहिए और तुम्हें क्यों बुलाऊं। इस प्रकार उनका व्यक्तित्व बहुत ऊंचा था।

एक बार आसाम प्रदेश की एक छात्रा का लखनऊ के बलरामपुर अस्पताल में शाम को निधन हो गया और अस्पताल के कर्मचारियों ने उसकी लाश लाश-घर में रख दी। अन्नासाहिब को जब यह ज्ञात हुआ तो वह बहुत दुखित हुए और कहा कि यदि मेरी स्वयं की पुत्री होती तो क्या उसकी लाश लावारिस लाश-घर में रखी जाती। उन्होंने कहा "यह छात्रा भी मेरे लिए पुत्रीतुल्य है।" अन्नासाहिब ने तुरन्त अपनी जेब से रुपए निकाल कर लाश-गाडी मंगवाई एवं छात्रा को महाविद्यालय परिसर में ले आए और रात भर जागते रहे और छात्रा के परिवार से टेलिफोन आदि से संपर्क करने में व्यस्त रहे। मुझे अच्छी तरह याद है कि हम सभी के बार बार आग्रह करने पर भी वे एक क्षण के लिए भी विश्राम हेतु नहीं गए। इस प्रकार अन्नासाहिब का अपने छात्र-छात्राओं के प्रति व्यवहार पितृतुल्य एवं स्नेहपूर्ण था।

अन्नासाहिब स्वभाव से सरल, सहृदय एवं अनुशासनप्रिय थे। वह सदैव इस बात का ध्यान रखते थे कि उनके कारण किसी को कष्ट न पहुंचे। मुझे कई बार उनके साथ यात्रा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैंने देखा कि वह देर तक अपनी शयनिका पर अध्ययनरत रहते थे। यात्रा में उनके साथ तीन चार टॉर्च रहती थी। रात नौ दस बजे के पश्चात् जब सहयात्री सो जाते थे तो वह अंधेरा होने पर वह उन टार्चों की सहायता से देर रात तक पढ़ते रहते थे। इस प्रकार वह दूसरों की सुख सुविधा का बहुत ध्यान रखते थे।

फरवरी सन १९७० में अन्नासाहिब के बंबई जाने के पूर्व डॉ. एस. एस. अवस्थी के आग्रह पर अन्नासाहिब के गायन का कार्यक्रम बली साहिब के घर पर आयोजित किया गया तथा उनसे राग पटमंजरी के विषय में अवस्थीजी ने अपनी जिज्ञासा व्यक्त की । उन्होंने दोनों थाटों

.....

टिप्पणी : वास्तव में श्रद्धेय अण्णासाहब ने विलम्बित एवं द्रुत ख्याल दोनों ही रचकर मेरे पास भेजे थे । मैंने विलम्बित रचना को तालबद्ध एवम् दोनों रचनाओं में मेरी सूझ के अनुसार कुछ पाठभेद कर उनके पास भेजा था, जिन्हें उनकी ओर से मान्यता मिली। के. जी. गिण्डे

की पटमंजरी को इतनी सरलता से समझाया कि सभी श्रोता चकित रह गए । साथ ही उन्होंने यह कहा कि यह तो सब शास्त्र के नियम हैं और अब इसकी गायकी का रूप देखो ऐसा होगा । उसके पश्चात् गौरी राग के विभिन्न प्रकारों के सम्बन्ध में विस्तृत चर्चा करते हुए उन्हें गाकर सुनाया ।

अन्नासाहिब संगीत के भंडार थे । प्रायोगिक एवं शास्त्र दोनों पर उनका समान अधिकार था।

अन्नासाहिब के अनेक अविस्मरणीय संस्मरण हैं जिनको कहां तक लिखा जाए । मैं तो सिर्फ यही कहूंगा कि वह एक महान संगीत महर्षि थे ।

डॉ. प्रेमसिंह किनोत
सहायक प्रोफेसर गायन
भातखंडे संगीत महाविद्यालय, लखनऊ

ENGLISH
SECTION

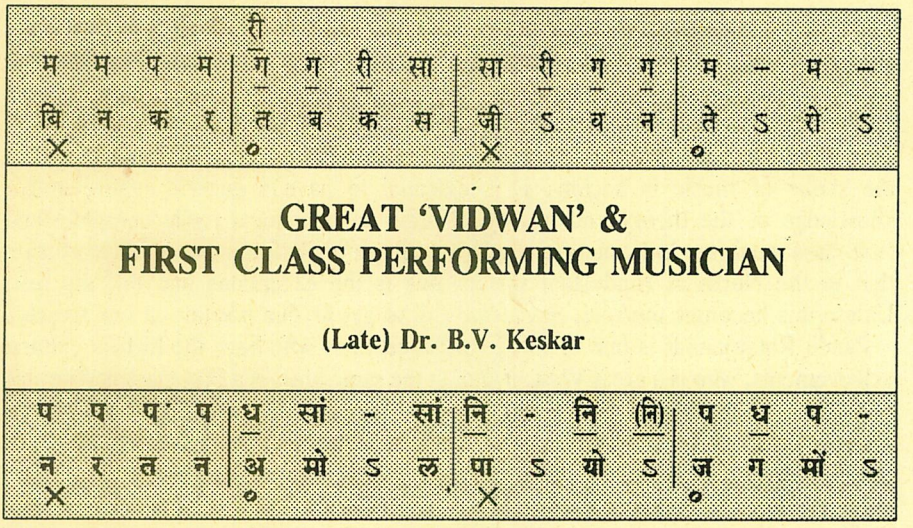

[Ex Minister, Information and Broadcasting, Government of India and Ex Chairman National Book Trust. Professor in Sanskrit Vidyapeeth, Varanasi. Got training in Dhrupad from Sri Harinath Mukherji of Varanasi. He translated into Hindi Pt. Bhatkhande's 'Shastrapravesh' in three parts and the Marathi Articles in his books. As Minister of Information and Broadcasting Dr. Keskar took lot of interest in the progress of Marris College of Music.]

The revival of music in India has been parallel, to some extent, to the national revival in the political and economic fields. The vacuum created during the days of British rule by which most of our cultural activities suffered a great set-back, had stifled music to such an extent that it was on the point of extinction. In Hindustani music, the work of Bhatkhande and Paluskar started the great revival.

Pandit Ratanjankar had the privilege of learning music from Pandit Bhatkhande. He also had the great benefit of practical guidance and help of the late Ustad Faiyaz Khan in the practical art of concert music. He is himself a scholar of Sanskrit and has made a deep study of the history and theory of Hindustani, and, to some extent, of Karnataka music.

In Hindustani music world we have few, in fact hardly any, Vidwans who are well up in both the theory and the practice of music. In fact, there is a prevalent notion amongst musicians that theory has no practical value. This is probably the result of generations of performing musicians who had no knowledge of Sanskrit and, therefore, lost touch with the basis of our music. In fact, there can hardly be any music without its theory and base and also its historical background.

Because of the want of this essential background knowledge of theory and

history and also an absence of general culture amongst performing musicians, music has suffered a double draw-back. Its stature in society has been lowered to an inferior position than other arts and the necessity of music as a part of general culture in society has not been able to impress the educated classes. There has been a tendency to confound the present position of musicians with the status of music in society. It is essential to have a general culture and a knowledge of the theory and history in order to become a really complete and first-class musician. In Karnataka music we will generally find it so. It is unfortunate that in the North in Hindustani system this is the exceptions and not the rule. Unless this becomes the rule, music will fail to get its due position in our society.

Pandit Ratanjankar is one of those rare exceptions who have the highest cultural achievements, who is a great Vidwan and, at the same time, is a first-class performing musician. He has devoted his life to music and its propagation with a single-mindedness an at a great personal sacrifice. This has been his 'tapasya' and I am sure that the coming history of music will benefit by his devotion and his work.

I hope he will live long to give the benefit of his experience, both theoretical and practical, to the growth of Hindustani music.

B.V. Keskar

New Delhi,
December 16, 1961.

.....

(Reproduced from the Commemoration Volume
in Honour of - Dr. S.N. Ratanjankar - 1961).

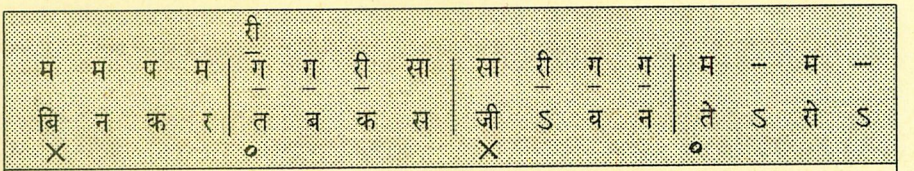

DR. S.N. RATANJANKAR : A TRIBUTE

(Late) Thakur Jaideva Singh

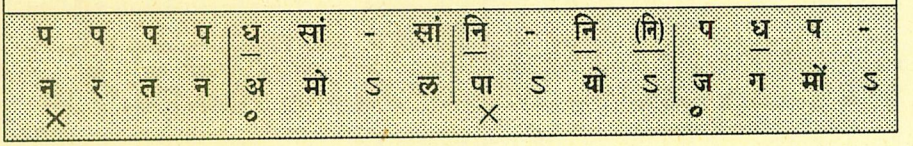

[*A musician of repute, M.A. degree holder and disciple of Pt. Shrikrishna Hirlekar and Pt. G.N. Natu. An experienced authority in al sorts of organizations concerned with music. Thakur Sahib was appointed as the Chief Producer of music at the A.I.R. Delhi. Learned Scholar of music and philosophy. His other interests were Yoga and Tantrik literature.*]

The Marris College of Music had been started at Lucknow in 1926 with the efforts of Pandit V.N. Bhatkhande, Raja Nawab Ali, Rai Umanath Bali and Rai Rajeshwar Bali. In the initial stages of the College, Pandit V.N. Bhatkhande used to reside mostly in Lucknow. It was the month of February when I went to see him there.

Shri. Shrikrishna Narain Ratanjankar had been appointed as Professor of Vocal Music in the Marris Music College. Shri. Ratanjankar was taking his class. Pt. Bhatkhande asked me to go to his class and watch how he was teaching. I hesitated, for firstly I was not acquainted with him, and secondly I considered it a bad manner to go to a teacher while he was taking his class. But Pt. Bhatkhande insisted that I should watch him teach and report my impressions to him. "Come along with me", he said., "I shall introduce you to him". There was no arguing with him. I could not but obey him. I went with him to Shri. Ratanjankar's class. Panditji kindly introduced me to him and said, "I have asked this gentleman to sit in your class, and watch how you teach". Panditji's word was law. Shri. Ratanjankar beckoned to me to sit. Panditji left. Shri. Ratanjankar was teaching to the class a song of Kadar Piya in Raga Kaphi "Rahi hai Kaise bijuri chamak rahi hai kaise bijuri". His method of teaching was excellent. After a few minutes,

the class was over. I came back and reported to Pt. Bhatkhande my impressions of the teaching qualities of his dear pupil, Panditji always used to refer to him by a term of endearment, viz., 'Babu Rao' or simply 'Babu'.

Fortyeight years have passed since then, but the memory of my first acquaintance with Shri. Ratanjankar is still fresh in my mind.

His Life :

He was born in Bombay on 31st December, 1899. His father's name was Shri. Narayana Govindji. He was a lover of Music and used to play Sitar. Child Ratanjankar used to listen to the entrancing tunes in ratpures whenever his father played his favourite instrument. Thus was sown in him the seed of the future musician.

His father marked his deep interest in music and appointed for him a tutor in music in 1907 when he was barely eight years old. The name of the tutor was Pandit Krishna Bhatt Honavar. He learned music under his guidance for nearly two years. He acquired such wonderful insight into the nature and form of musical notes that he could recognise and name the note played on any instrument. His father now put him under the guidance of Pandit Anant Manohar Joshi an excellent pupil of Pandit Balkrishna Buva Ichalkaranjikar.

After some time, his father invited Pandit Vishnu Narayana Bhatkhande to listen to the boy and make suggestions for his future training. Panditji asked the boy to sing all the twelve notes **"Sa-re re-ga ga-ma ma pa-dha dha-ni ni"** in succession without stopping. Ratanjankar sang out these notes in quick succession without the slighest flaw. Panditji was greatly impressed and recognised him the promise and potency of a great musician.

In 1912, he became a regular pupil of Panditji and this relationship lasted till the end of his life. In 1916, Ratanjankar made his debut as a performer in the All India Music Conference organized by Panditji at Baroda. Every one was greatly impressed by his performance. In 1917, Panditji persuaded the Maharaja of Baroda to grant him a scholarship so that he could learn music there, under Ustad Faiyaz Khan. He received training from Ustad Faiyaz Khan for five years in Baroda and also passed the High School Examination. He also took part in the All India Music Conference held in Delhi in 1918 and in Banaras in 1919. In 1922, he passed the Intermediate Examination. In 1923, he joined the Gujarat College at Ahmedabad. Owing to pecuniary difficulties, he had to come away to Bombay. In 1926, he took his B.A. degree as a student of the Wilson College, Bombay.

Pandit Bhatkhande had by that time established Sharada Sangit Mandal and appointed him a music teacher in it.

In 1926, when the Marris Music College was established in Lucknow, Shri. Ratanjankar was appointed as Professor of Vocal Music there. In 1928, he was appointed as the Principal of this college which was later named Bhatkhande Vidyapeeth. He held this post till 1956 when he was appointed Vice-Chancellor of Indira Kala Sangit Vishwavidyalaya, Khairagarh (M.P.). In 1957, he was awarded

'Padmabhushan' by the Government of India. He retired from Khairagarh after three years or so. Since then he lived in Bombay. The Khairagarh University conferred on him the degree of D. Mus. (honoris causa).

In the last years of his life, he had to face great trouble- both physical and financial. He became a prey to arthritis which made it impossible for him to move about. Financially, he was in sore straits. As Principal of the Bhatkhande Vidyapeeth, he drew only a pittance of Rs. 250/- per month which was not paid regularly. He sacrificed his whole life for the mission of his Guru. The Maharashtra Government refused to grant him any aid, for he had worked entirely in Uttar Pradesh. The U.P. Government was not prepared to grant him any aid, for he had worked privately managed College and not in any Government Institution. After a good deal of representation, the U.P. Government granted him an yearly financial aid of Rs. 3,000/- in the last year of his life. Earlier, it had granted Rs. 2,000/- in two instalment of Rs.1000/- each.

His health went on deteriorating. He was admitted in a Nursing Home on 12th February. He passed away there owing to heart failure on 14th February, 1974 in the early hours of the morning.

Dr. Ratanjankar was great in many respects as a performer, as a teacher, as a composer and as a musicologist.

As a Performer

He was an excellent performer from the point of view of sheer purity of Raga, he had few equals. He could sing Dhruvapada, Dhamar and Kheal equally beautifully. Unfortunately, he was audience- conscious and was not at his best in a large gathering. In smaller gatherings, however, he shone as an ace performer. Both in alapa and tana, he was very creative. His saragams were not simply an exercise in note production. They were beautiful combinations, closely allied to laya, and beautifully expressive of the Raga-bhava.

As a Teacher

He was as great a teacher as perfomer. He knew the heuristic art of eliciting from his pupils most difficult note-combinations successfully. Whether it was the gandhara of Todi or of Piloo, whether it was the dhaivata of Marwa or of Deshi, he knew the trick of drawing it out from the throat of his pupil.

He has left behind three pupils as excellent performers in Shri. K.G. Ginde, Shri. Bhatt and Shri. Dinkar Kaikini.

As A Composer

Unfortunately, there have been very few composers in Indian Music. Particularly in Hindustani Music, most of the composers were Court Musicians. So far as the word content of their songs is concerned, they either lauded in it their patrons or pondered to their low erotic taste. From the view point of the word-content, Dr. Ratanjankar's compositions are singularly free from obscene, vulgar, erotic expression. From the point of view of the musical content, his compositions are

superb. He has also composed excellent songs in certain out-of-the way Ragas in which old songs are not available. These have been published in notation in three parts under the title 'Abhinava Gita-Manjari'.

He has left behind nearly one hundred and fifty new compositions which have not yet been published. I hope his pupils will see to their publication as soon as possible.

He also composed a few Operas of which Govardhan Uddhar was successfully staged at Lucknow.

As a Musicologist

He was the one person in the country who was not simply a theoretical musicologist, but also a practical one. When I was in All India Radio, I had a scheme of getting a Radio Dictionary of Indian Music prepared. The plan was to give at first a well written definition of technical terms like Vadi Svara, upanga or kriyang Raga, gitkiri Zamazama etc. and then give a practical illustration of the same on tape.

Another scheme of mine was to get a clear written description of the prakaras or varieties of Ragas like Mallar, Kanada, Todi, Bhairava, Bilawal etc., and then to give practical illustrations on tapes. Both of these schemes were approved by the then Minister of Information and Broadcasting, Dr. B.V. Keskar.

I had entrusted these assignments to Dr. Ratanjankar. The work had started. He used to send his written explanations to me for approval. When I conveyed my approval with some amendments in certain cases, he used to get the practical illustration recorded at the Bombay station.

About half a dozen of such tapes had been prepared when I retired from All India Radio in 1962. Unfortunately, the scheme was not pursued any further by the All India Radio. Even the tapes that were prepared were scratched and used for propaganda purposes during the Indo-Chinese War.

He wrote Sangita-Shiksha and Tan Sangraha in three parts which have been published. His last book Sangit- Paribhasha is written in Marathi and has been published by the Maharashtra Government.

He also wrote expository Karikas (Sanskrit Verses) on "Shrimallakshya Sangitam" of Pandit Bhatkhande. It has not yet been published.

There has hardly been a musician in this country who has served the cause of music in so many roles as Dr. Ratanjankar. It is difficult to fill the gap he has left behind.

(Reproduced from the Journal of the Indian Musicological Society, Vol. 6:/1 March 1975 issue : Courtesy: Indian Musicological Society: 15-08-1990).

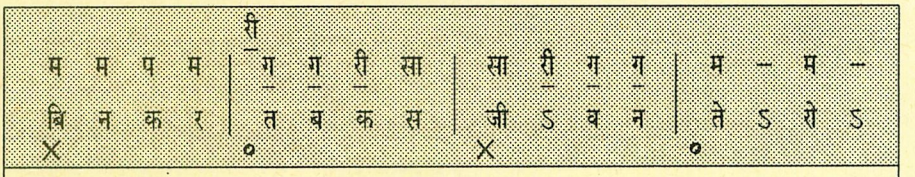

IN AFFECTIONATE REMEMBRANCE

Kumar Mukherji

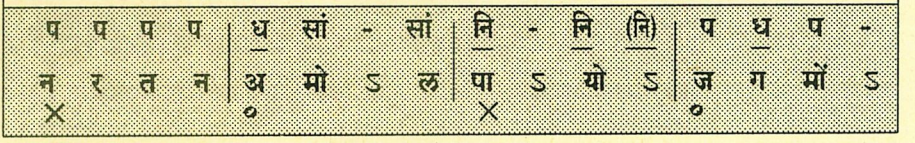

[The author is the son of late Prof. Dhurjati Prasad Mukherji, the internationally renowned Economist, Socialogist, Musicologist and literary figure of Bengal and a close friend of Pt. Shrikrishna Ratanjankar. In fact, Prof. D.P. Mukherji was the first student of the Marris College of Hindustani Music under Pt. Vishnu Narayan Shri. Kumar Mukherji, a disciple of Ustad Mushtaq Hussein Khan of Rampur Darbar. The genious came under the spell of Ustad Faiyyaz Hussein Khan of the Baroda Darbar. He also had his training from Ustad Ata Hussein Khan and Ustad Latafat Hussein Khan at Calcutta thus established himself as a musician of the Agra Gharana. Served as a music critic of the Statesman Calcutta for many years, also served as Director Coal (India)

My first distinct recollection of Pt. Shrikrishna Ratanjankar was when he sang before Gurudev Rabindra Nath Tagore in the house of Prof. N.K. Siddhant, a colleague of my father in Lucknow, in March 1935. I was barely eight at that time and had little comprehension of what was happening, though I had heard the greatest Ustads already on my father's knees. All I remember was that Tagore was not well; he had high fever. Yet, he sat up on the sofa with his flowing white beard, eyes closed, a majestic Moses like figure, till eleven at night. When the applause died down he said something to indicate that he liked the Chhayanat immensely, more than the Jaijaiwanti and Paraj that followed and then proceeded to sing a Dhrupad in Natanarayan to the great astonishment of those present including Pt. Ratanjanjar. Tagore, as I said, was tired and unwell but asked my father to come to his bedroom and we returned home without him. I knew now what they discussed because this was the beginning of a correspondence between

Tagore and my father on music, which was published under the title 'Sur-O-Sangati' in 1935.

Tagore's question, as I find in that book, is a fundamental one. Let us not forget that he had his initiation into classifical Raagadari Sangeet through Jadu Bhatta, the legendary Dhrupad singer of Bengal. So did my father come to Khayal & Thumari in Lucknow via Radhika Goswami and Mahim Mukherji's Dhrupad in Calcutta. Tagore's is all art has to have clearly demarked limiatations born out of proportions without which art loses its unity. Dhrupad had it, old Bengali songs had it and even Bhajans had it. It is only in Kheyal singing that one has a procession of 'Angs' and 'Alankars', which never seem to end and are often repetitive. Why not sing Jaijaiwanti in different 'Chaals' based on different compositions (Bandishis) ? Tagore who often prefers analogy to logic asks "When your wife dresses for dinner in a friend's house, does she wear all her jewellery and all her Sarees from her wardrobe ?"

In case I am misunderstood, Tagore's reservations, I hasten to repeat, were Kheyal vis-a-vis the kind of music he grew up on and had little to do with Pt. Ratanjankar's virtuosity in particular. In fact, the best person to give a suitable reply with demonstrations could have been Ratanjankar himself, who could at will develop a Raga strictly on the lines of a particular composition (Bandish) followed by different compositions in the same Raga. But the question none the-less is a pertinent one in relation to Kheyal and raises a fundamental aesthetic issue. There is little doubt that structural unity in any classical form cannot but be based on first principles of restraint and proportion. I wonder, how Tagore would have reacted to Ustad Abdul Wahid Khan's legendrary 'Swara Vistar' of Multani for three and half hours ? I do know, however, he was completely mesmerised by Ustad Faiyyaz Khan's Ramakali 'alap' in Jorasanko, Calcutta and gave him a 'Nazarana' of twenty one gold sovereigns. Faiyyaz Khan Saheb also used to recall, not without a hint of fun, how he sang 'Iman Kalyana and Iman' in eighteen different 'angas' to Pt. Bhatkhandeji in Kashmir, something that his illustrous disciple, Ratanjankar, could have been proud of.

To come back to Pt. Ratanjankar, whom my father always referred to as an 'Ocean of learning'. Of that there is no doubt. Who else had inherited the wisdom and learning of Pt. Bhatkhande, the first Indian to roam all over India and systematise North Indian Classical Music in the chaotic state of theoretical disorganisation in which he found it ? But Pt. Ratanjankar did not stop at that. He not only brought his own remarkable analytical powers into play but his own experience and 'talim' from two of the greatest Ustads of his time -'Aftab-e-Mausiqi' Ustad Faiyyaz Hussein Khan of Baroda and Ustad Mushtaq Hussein Khan of Rampur. While Ratanjankarji was a disciple of the former, he was greatly influenced by the latter's Gwalior/Sehaswan Gayaki. Moreover, it is worth mentioning here that Pt. Ratanjankarji had basic 'talim' in Gwalior Gayaki from Pt. Anant Manohar Joshi in his young age. In fact, as he confessed to me once in his later years, his style of singing was really a synthesis of the two. And what a brilliant synthesis it was ! While Anna Saheb as we used to call him, has produced knowledgeable

and brilliant disciples like S.C.R. Bhat, Chidananda Nagarkar, K.G. Ginde, Chinmoy Lahiri, V.G. Jog, Dr. Sumati Mutatkar and (my old partner in duets) Dinkar Kaikini, why have they not in their turn been able to perpetuate this tradition through their disciples with as much success ? We of the older generation find this 'Gayaki' complete in its aesthetic and intellectual appeal. Why does it not appeal to the present generation ? Pt. Bhatkhandeji's dream has certainly come true. No one dares teach music today without his Six Volumes of Kramik Pustak Malika and the Ustads secretly refer to them without admitting it. Classical music has spread widely among the middle classes and is no longer the prerogative of the privileged few. All this could not have been possible without Pt. Ratanjankar and his boys. But what has happened at the same time to the authenticity of style and the standard of appreciation ? What we hear today is not grammatically incorrect. But I suppose, mere knowledge of grammer does not produce literature. It must be the same case with music.

What helped Ratanjankar's disciples in becoming established musicians themselves was that their Guru was himself an outstanding artist. Even Balasaheb Poochhawale and C.R. Vyas, who were from a somewhat different stream, though from the same tradition, came under Ratanjankar's spell. His learning and virtuosity had very few equals. I have heard him sing Nayaki Kanhada, Suha, Sugharayee, Shahana & Bahar in one sitting and make them appear like the 'Pancha Pandawas', children of the same mother but each with his distinct outstanding feature. He would similarly amuse himself by singing Ragas close to one another like Poorvi, Pooriya, Sazagiri, Sohini and Hindol, which with lesser musicians would have been a bore, if not disastrous. I have heard him recreate lost Ragas like Kaunshi Kanhada of Bageshri Anga, Deepak and Shuddha Malhar (same notes as in Durga) and hold us spell bound with his blend of artistry and intellctual prowess. It is a great pity that very few even of our generation have heard Pt. Shrikrishna Ratanjankar at his best. Years of dedicated hard work to the cause of Marris Music College without adequate remuneration, indifferent hostel food, away from home and particularly teaching students, male and female, on different keys, had taken its toll of his voice and health. When Keskar became the Minister for Information & Broadcasting at the Centre, Anna Saheb's luck turned at last, but his voice and form by then were things of the past.

In his later years, he would come to Nanigopalbabu's Bengal Music College Calcutta as an examiner. I would make up for my lost youth and spend hours with him in discussion and singing. Also he would sing at my house every year before a well chosen audience with varying success. The last time he sang, two of his disciples accompanied him; one was Chinmoy Lahiri and the other Sita Sharan Singh (an old friend of mine from Lucknow who was gifted with a magniticent voice). The 'Tanpuras' were tuned to 'D' Sharp (Black Two key of the Harmonium) and Annasaheb's 'Taans' in Shuddha Aakaar spouted upto Pancham in Taar Saptaka with graceful ease, while his two disciples struggled to stand on the upper Shadja in imitation of Anna Saheb's open chested voice production. Glimpses of his glorious past came back that evening, the remarkable control of Shrutis - his

own speciality, his Sargams which were specially designed to bring out the anatomy of the Raga, the playful treatment of the Bandish and above all the 'taans', the like of which I had not heard from him since my youth in Lucknow. He sang Jhinjhoti, Khambawati, Hem-Naat (his own Raga & his own compositions) and Kafi-Kanhada. I could not help feeling that this was perhaps his 'Swan Song so impressive was the recital of the man in his seventies that evening. That evening I was reminded of the very statement made by my father regarding Pandit Ratanjankar in one of his books wherein he states, "I have heard good many outstanding musicians of my time but then I will run miles to hear Shrikrishna Ratanjankar wherever he would be singing".

At the end of the recital that day, we were all praise. Annasaheb, who did not count immoderate modesty as one of his virtues was quiet for a while and then said to us.

"मैं हिन्दुस्तान के सब से बड़े उस्ताद फैयाज़खाँ साहब का शागिर्द हूँ और हिंदुस्तान के सबसे बड़े पण्डित भातखण्डेजी का शिष्य हूँ। अगर कभी थोड़ा बहुत गा लेता हूँ तो कौन-सा कमाल किया मैंने?"

Next year he failed to turn up on his annual visit to Calcutta. He was gone for ever.

Kumar Mukherji

.....

Kumar Mukherji
8, Short Street, Calcutta 700 017.

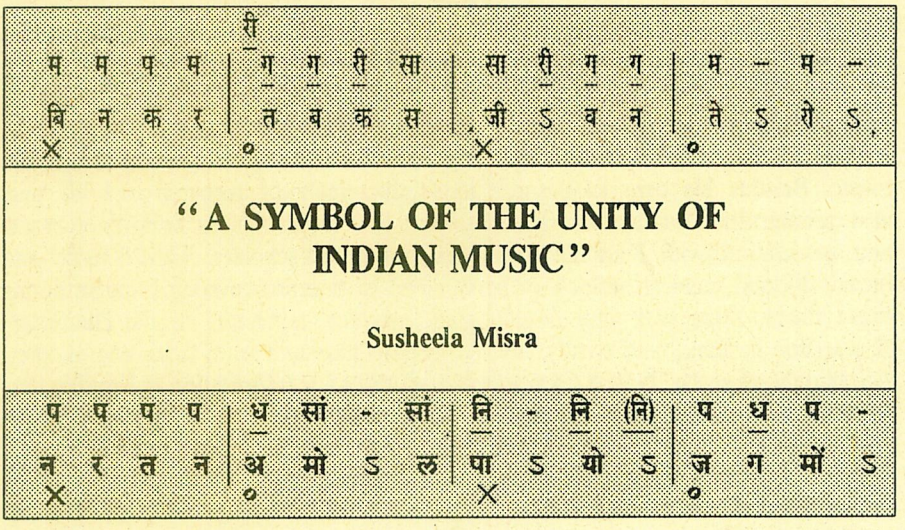

"A SYMBOL OF THE UNITY OF INDIAN MUSIC"

Susheela Misra

[Daughter of Prof. P.S. Nambiar, Kerala. Graduate in English, Music and Dramatics. Had a long training in Karnatic Music and was a regular broadcaster on A.I.R., Madras and Tiruveli. Switched over to the Hindustani music and joined Bhatkhande music college, Lucknow in 1944. Graduated from there. Then broadcaster in Hindustani style as well since 1952. Producer, in classical music on A.I.R. for 28 years. Disciple of Pt. G.N. Natu and associated with Pt. Ratanjankar. Has to her credit number of artiles on music. Has published many a book on music both in South Indian and Hindustani style and literature in general.]

Having written three separate chapters on Dr. Ratanjankar in three of my books: "MUSIC PROFILES" (out of print now), 'Great Masters of Hindustani Music' and "Music Makers of the Bhatkhande College," there is nothing new that I can add about this great savant and music devotee who was in our midst till 1974. In this modern era of materialism and craving for wealth, publicity and awards, Srikrishna Narayan Ratanjankar seems to have been almost an anachronistic personality, a Soul from another age of long ago; and yet, he was one of the very few modern, educated, broad-minded performing artistes who lived at a time when most of the Ustads were uneducated. This was because, Ratanjankar had the good fortune of having as his mentor guru and guide, no less a person than Pandit Vishnu Narayan Bhatkhande who, along with Pandit Vishnu Digambar Paluskar, are regarded as the two pioneers who were responsible for the rennaissance and efflorescence of our classsical music early in this century. An erudite music scholar and music devotee. Ratanjankar's entire life was dedicated to classical

music, its enrichment, popularisation and elevation to a high pedestal as in the good old days. He also had the privilege of receiving practical training in the art from well-known maestros like Krishnambhat Honawar. Pt. Anant Manohar Joshi and from Aftab-E-Mousiqui Ustad Faiyaz Khan in Baroda.

Thus he was well-groomed in both the theoretical and practical aspects of Hindustani music. Besides his own long and deep study, years of research and his own vast scholarship, Ratanjankar had also imbibed much by his friendly contacts and association with Karnatic musicians and music-scholars. This eclectic and broad-visioned musical outlook of his seemed even more amazing because during those times, there was very little contact between exponents of the Hindustani & Karnatic systems, and hardly any curiosity to hear and learn from one another. It was only when Dr. B.V. Keskar became Minister for Information & Broadcasting that mutual understanding and contacts were fostered through the powerful media of AIR.

Let me give two little personal experiences to prove Anna Saheb's broad musical vision. I had already been a well-graded broadcaster of Karnatic classical music when I came to seek admission in the first year of the Bhatkhande College of Hindustani Music in Lucknow. Therefore, Dr. Ratanjankar himself took my practical test. It was a VARNAM that he wanted me to sing because he knew the importance of the Varnam in the training of a Karnatic music student. I sang the Atataala Varnam in Bhiravi ('Viriboni') and the dugun; it pleased him so much that he straightway tested my 'swargyan' by singing a few sargams and admitted me into the second year. Later on, he himself composed a number of Varnams in Hindustani ragas and incorporated them into the syllabus.

Another little incident was connected with the annual Janmashtami programmes which were celebrated with great zeal by staff and students and attracted such large audiences that loudspeakers were installed outside the Hall for listeners outside. During that particular year, Anna Saheb (as we used to know Dr. Ratanjankar) decided to make it a comprehensive programme in which a student from each province was asked to present a song in his or her mother tongue. Thus we presented songs in Sindhi, Marathi, Punjabi, Bengali, Telugu, Sanskrit, Tamil & Assameese. I remember that I sang that popular song "Janaki ramana; Dasharathanandana" in Kapi (in Karnatic style). This was Anna Saheb's way of promoting national integration and proving the unity of all Indian music. The languages were different, but many ragas were common. He had many scholars like - Justice Venkatrama Iyer, Prof. Sambamurthi, Prof. Raghavan and many others as his friends and it was Justicee Venkataramana Iyer who hailed him as "the symbol of the Unity of Indian Music".

It was lucky for Indian music that Akashwani which was at the peak of its glory and creativity at that time, had Dr. B.V. Keskar as the Minister for Information & Broadcasting. He was not only well-trained in both the practical and theoretical aspects of Hindustani Music, but was also a very broadminded music lover who brought the exponents of both the Karnatic and Hindustani systems closer to one another. He was fortunate to have secured the whole-hearted support and

active co-operation of renowned musicians and musicologists like Dr. Ratanjankar, Pt. Ravi Shankar (Founder Director of Akashwani's Vadya Vrinda in Delhi), T.K. Jayarama Iyer (Incharge of the Karnatic group of Vadya Vrinda in Delhi), Semmangudi Srinivasa Iyer (Chief Producer, Karnatic music), Thakur Jaideva Singh (Chief Producer, Hindustani music), G.N. Balasubramanyam, Dr. Balamurali, Dr. Sumati Mutatkar - all occupying important positions in the Akashwani hierarchy. Altogether, it was the golden period of AIR and classical music in India. All of them worked harmoniously and many vast changes were introduced boldly by Dr. Keskar and others unmindful of whether they received boquets or brickbats. The formulation of the then highly controversial but now fully accepted Audition System, the Saturday National Programmes, Radio Sangeet Sammelans and Annual Competitions, Radio Weeks, Sunday Morning Recitals, Tansen Urs Festivals and so on and on. It was really a period of sweeping and lasting changes, most of which are still being carried on after all these years. Till their joint combined efforts began, there were no difinite rules nor guidelines for the assessment and gradation of music-artistes. Selections used to be done in a haphazard way and sometimes depended on the personal whims and likes of a one man audition committee. Taking up the challenging role of Chairman of such a new Audition Board made Dr. Ratanjankar the butt of virulent brickbats from many quarters but he withstood it all like a true Karmayogi. In spite of a lot of initial opposition from certain quarters, including certain aristes and their admirers, the system of audition chalked out by Dr. Ratanjankar with the full support of Thakur Jaideva Singh, Govindrao Tembe and many other important persons in the field of music, has proved the best possible way (so far) to assess the worth of artistes selected for broadcasting. This is evident from the fact that the resentment has died out and the Audition system has continued smoothly through all these decades.

It was more than half-a-century ago that I heard Anna Saheb (or Principal Saheb) for the first time over the AIR and that too across a distance of over 2000 miles or more. I was a young student in Kerala with no chances to hear Hindustani music concerts. Even the radio was a novelty in Ernakulam-Cochin, Tinkering with the knobs of our newly acquired Philips radio one late night, I suddenly heard an impressive rendering of Khayals in Maluha-Kedara from some far-off city. I could identify neither the Station nor the singer until at the end of the programme at 10.30 p.m. the announcement in Hindi came from the Lucknow Station of AIR that the vocalist was Principal Srikrishna Narayan Ratanjankar. The announcement of the names of the accompanists and supporting vocalists were drowned in a lot of atmospheric disturbances. The master's style sounded very much like Ustad Faiyaz Khan's in some respects though his voice quality was quite different. Later on, when I became a student of the Bhatkhande College in Lucknow, I learnt that Anna Saheb had received training from many gurus like Krishnambhat Honavar. Pt. Anant Manohar Joshi (Gwalior Gharana) and Aftab-E-Mousiqui Ustad Faiyaz Khan for many years. That was why Anna Saheb's vocalism was a rich blend of the massive Gwalior style and the majesty of the Agra gharana. The vocal styles of his prominent disciples like late Chidananda

Nagarkar, Pt. K.G. Ginde, Pt. Dinkar Kaikini, Pt. S.C.R. Bhat, Dr. S. Mutatkar and others reflect these features.

During my student years in the college in Lucknow, I got plenty of opportunities to hear Anna Saheb in fine form. Some of his unforgettable performances were at the end of the annual 72 hours' "Sangeet Dhara" programmes (continuous, non-stop recitals for full 72 hours by present and past students and staff members). Dr. Sampurnanand, when he was the Chief Minister, used to attend these sessions at 4.00 a.m. (the concluding part of the Sangeet Dhara) when Dr. Ratanjankar's turn came. Often, Pt. G.N. Natu (The Vice Principal and his close friends and associate) or students like Nagarkar, Dinkar, Chotu, Bhat or Mahadkar for vocal support, V.G. Jog on violin and Sadashiv or Sakharramji on Tabla used to make up the inspiring team. I can still recall many of those inspired recitals with a sense of nostalgia. A couple of years after Anna Saheb's death in 1974, I was invited by the Akashwani Head Quarters in Delhi to proceed to Delhi (I was on the Staff of AIR Lucknow as Producer of Classical music from 1952 till end of 1980) in order to produce a special National Programme based on the archival recordings of Dr. S.N. Ratanjankar. I was pained to find that the Delhi Archives did not contain a single recording of his when he was in his peak performing form. The only recordings available were of his old age and those too done at a time when his voice had been spoilt by continued ill-health. I had to take out bits and pieces from several of his recordings like Maligaura, Hem-Nat, Sur Malhar and so on. It was a frustrating experience but the Director General Sri P.C. Chatterji, understanding my feelings of frustration, kindly permitted me to announce for the National Programme that I produced and presented mentioning that I had to choose out of what was available and that was far from satisfactory so that younger generations should not judge him on the basis of those old-age recordings.

I became an approved broadcaster of Hindustani music when I was just a third year student. Initially I used to feel different because of the Karnatic 'brigas' etc., that crept into my elaborations, but my gurus like Natu Saheb and Anna Saheb encouraged me by saying that these added spice to the singing. I was a 4th year student when I broadcast Shyamkalyan in a late night chunk of 30 minutes (the traditional Roopak bandish 'Mhaara rasiya' and Anna Saheb's drut composition 'Paayal mori Baaje'). The next day when I reached the college, Anna Saheb said too me: "I heard your Shyam-Kalyan last night; it was of a very good standard and totally Hindustani in flavour You have shed the Karnatic touches fully". It was only then that I realized how closely he had been watching my progress, although I was mainly a student of Pt. Natu Saheb who used to teach me at home for many years. Of course Anna Saheb was a genuine admirer of Karnatic music. He revealed his admiration by borrowing not only Varnams, but also by adapting many ragas from Karnatic into Hindustani system such as Charukesi, Narayani, Suranjani, Basantmukhari, Malayamarutham etc. His name will go down to posterity as one of the most prolific 'Vaggyeyakars' (composers) of this century. Through the publication of the latest editions of 'Abhinav Geetmanjari'

in the beautiful caligraphy of his most devoted disciple Pt. Ginde, the 'Acharya S.N. Ratanjankar Foundation' has done a great service to the world of music by publishing 237 compositions of Anna Saheb in 74 ragas and another 168 rarer 'bandhishes' in 58 current as well as rare ragas, making the two volumes veritable treasure chests for us music-lovers and students. Besides writing three operas and directing their staging by his students, he experimented in creating new raga-combinations like Hem-Nat, Maru Behag, Salag Varali, Rajani-Kalyan, Kedar-Bahar, Viyog-Varali etc. His musical compositions running into hundreds, cover a wide variety such as Dhruvapads, Dhamars, Vilambit and drut khayals, Lakshangeets, Sadras, Varnams (in Karnatic patterns), Taranas with Sanskrit verses interwoven, Ragamalikas, Taala-lakshangeets and simple devotional songs.

Many of his colleagues like Pt. G.N. Natu, Pt. M.V. Kalvint, Sri S.A. Mahadkar and his outstanding shishyas like late Nagarkar, Pt. Dinkar Kaikini (Dinarang) and Pt. Ginde have likewise enriched these aspects of Hindustani Music.

Even at the cost of ruining his own voice, Anna Saheb used to give intensive training to his post-graduate students and special 'Gurukula' students and that is how he has given us so many distinguished students who shone either as performing artistes or as gurus or have occupied high posts in Akashwani, in Universities and so on. And the college has produced thousands of discerning listeners. Although Anna Saheb lived the best years of his life (from the age of 26 to 57) in a humble room in the college with only the barest necessities of life available, and although he had to struggle in financial stringencies most of his life, he commanded so much respect for his musical stature and his selfless services to the art, that his room used to be the meeting place of some of the greatest musicians and scholars of the times. Masters of all gharanas used to visit him and perform in the College for the staff and students. I can still visualise Anna Saheb in that little room, immersed all the time in his studies, writings, discussions, composing, singing... a real 'Karmayogi' dedicated to the mission handed over to him by his guru and mentor Chaturpandit Bhatkhandeji. Never complaining about the material hardships that he had to face throughtout his life and stoically bearing many personal tragedies, Padma Bhushan Dr. Ratanjankar served the cause of Music all his life. He was a true 'Sangeeta Bhakta' whose life-long contributions enriched many aspects of our musical heritage.

Susheela Misra

●

Susheela Misra
1, Shahnajaf Road, Lucknow : 226 001.

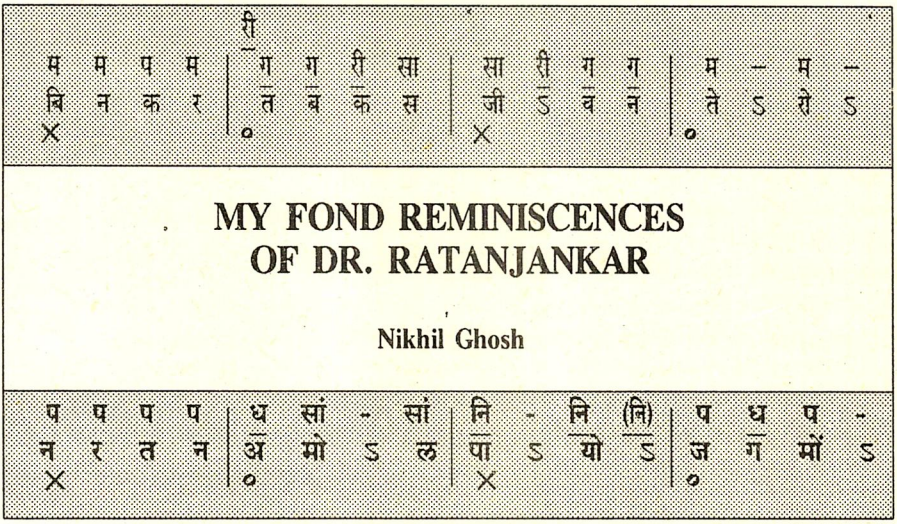

MY FOND REMINISCENCES OF DR. RATANJANKAR

Nikhil Ghosh

[*Eminent Tabla player; disciple of Pt. G.P. Ghosh, Ustad Amir Hussein Khan, Ustad Ahmadjan Thirakwa. Founder Managing Trustee of Sangeet Mahabharati of Bombay and presently engrossed in bringing out concise Encyclopaedia on Music and Dance. He has also evolved his own Notation System for Vocal and Tabla and has published several books. Has toured almost all foreign countries presenting lecture- demonstrations and concerts.*]

My association with Dr. S.N. Ratanjankar was a long one filled with sentiments of various hues. I have rarely seen a person so simple and modest, yet so immensely knowledgeable. A stickler for traditional values yet with an open mind and progressive outlook and a willingness to accept new ideas, topped with a fine sense of humour and a feel for aesthetics.

It was in early 1940's when I alongwith my elder brother Shri. Pannalal Ghosh met Dr. Ratanjankar at the Ruia College Hall in Bombay where he gave a vocal performance with Shri. K.G. Ginde and Shri. S.C.R. Bhat as supports. We were deeply impressed by his open throated tuneful recital perfectly balanced with rhythmic embellishments. His rendition often brought us glimpses of the magnificent 'gayaki' of Ustad Mushtaq Hussain Khansab of Saheswan. When we met him after his performance, his soft and amiable nature further impressed us.

The second meeting was in the late 1940's at Prof. Deodhar's school, where I had accompanied Ustad Vilayat Khan (Sitar Nawaz) in a 'baithak' concert. The session which lasted a good four hours was attended by many eminent musicians including Vilayat Khan's uncle Ustad Wahid Khan and Dr. Ratanjankar himself. I particularly and gratefully remember receiving Ratanjankarji's spontaneous

appreciation and blessings.

Sometime in the early 1950's the historical movement by all the classical musicians in India especially those in Bombay to protest against the method of re-audition in the All India Radio led to the formation of Bharatiya Sangit Kalakar Mandal, with Ustad Vilayat Hussain Khan as the President. Dr. B.V. Keskar was the Union Minister of Information and Broadcasting who in consultation with Dr. Ratanjankar made a noble attempt to screen all the classical radio artistes especially for the purpose of a more organised and justified gradation. But the attitude of some members of the Audition Board during such re-audition sessions (which were in those days face to face) was gaining a notorious reputation as their questions to the auditioned musicians were often accompanied by indirect insults. Several senior musicians all over the country were pained by this. Innumerable complaints from all over instigated the musicians in Bombay in particular to initiate the protest movement. Almost all the musicians in Bombay including Ustad Vilayat Hussain Khan, Azmat Hussain Khan, Amir Hussain Khan, Bade Ghulam Ali Khan, Amir Khan, Mogubai Kurdikar, Hirabai Barodekar, Gangubai Hangal, Prof. B.R. Deodhar, Gajananrao Joshi, Vilayat Khan, Allarakha and many others besides myself took active part in mobilising and gearing up this movement, to convince the Government to remodel the method of auditioning all over the country. Finally the Kalakar Mandal took a formal shape under the legal advice of the advocate Shri. Sushil Kawlekar. The residence of Shri. D.K. Manjeshwar and his wife Kaushalya-bahen (who was the Secretary) was the Mandal's registered office. Myself and Shri. Arvind Parikh were the programme secretaries. Young Nikhil Banerjee who was on the threshold of his career in those days almost lived with me like a shadow, especially since his elder brother Prashant Banerjee was my pupil. All the members got together and formed smaller groups and took turns for picketing at the gates of Bombay's radio station, to persuade the scheduled artistes not to broadcast till the AIR authorities complied with our request. The picketing went on for perhaps a month or even more resulting in disrupting the scheduled broadcasts to quite an extent. The Mandal also made a representation to the Ministry in Delhi. Meanwhile, the impact of the movement on the Government was showing, and with a view to reach a reasonable point of understanding with the Mandal, the Government invited Ustad Vilayat Hussain Khan, and Shri. Gajananrao Joshi as Advisors to AIR, and some musicians like V.G. Jog and Azmat Hussain Khan were given administrative jobs. As a result, the Mandal activities were on the verge of collapsing.

In one of the important meetings of the Mandal in which Pandit Omkarnath Thakur presided, I proposed to clarify to the Government that we were not against the idea of re-audition but the objectionable mode and method in which it was carried out. If the method of auditioning could be changed by resorting to a more gentle and friendly approach and doing away with harsh criticism by the audition-panel at point-blank range, the Mandal would co-operate with the noble idea of the revision of gradation. My proposal was not only greeted with cheers but after a formal approach the Government accepted it and refashioned the

audition system which served the Mandal's purpose. I was one of the front-ranking members of the Mandal and with the toning down of the Government's stance, I requested my colleagues to co-operate with the AIR by offering themselves for re-audition and obtain suitable grades. Till then, I used to get Rs. 15/- per broadcast session and the grade was not made known to me.

When it was my turn to appear for the tabla audition I went fully geared-up knowing very well that the Audition Board led by Dr. Ratanjankar would single me out for grilling. I was indeed asked some of the most difficult and challenging questions through the intercom by Ratanjankarji himself. By God's grace I was able to answer to all of them and even performed most of the answers. My audition lasted more than an hour after which I came out of the studio with my tablas and found Ratanjankarji and Mr. Haksar standing there to meet me. Dr. Ratanjankarji expressed his deep appreciation on my performance which I still remember fondly. Refreshments were arranged as a gesture of Ratanjankarji's affection and we had a cordial discussion about the tabla traditions, great composers and their compositions. A few days later I found myself placed in 'A' grade with a revised fee of Rs. 80/- per broadcast session. I further received open appreciation from him and Dr. Keskar after my performance at the Sapru House in Delhi in celebration of AIR's first Sangeet Sammelan in the mid-fifties. Soon also came a time when alongwith Ratanjankarji and Gajananrao Joshi I was invited to judge AIR's National music competition.

A few years later, I requested Dr. Ratanjankar to scrutinise the syllabus of my institution Sangit Mahabharati in Bombay, then known as Arun Sangeetalaya (estd. 1956). He readily agreed and then examined our course and syllabus thoroughly with full approval under his signature. I then invited him to visit the institution for examining the system of teaching including the matter and manner specially that of the vocal section, all of which I had evolved over the years after much thought and research. He did so and I gladly accepted a few suggestions that he made. This was followed by a simple lunch offered by my wife Usha. I still have fond memories of how extremely delighted he was with the Bengali-style fish curry. With the passage of time, our cordiality and mutual appreciation increased day by day.

In 1967, I approached him for his comments on the press copy of my book *FUNDAMENTALS OF RAGA AND TALA WITH A NEW SYSTEM OF NOTATION* which took me considerable time to research, experiment upon and compile. This meeting was very interesting which I narrate below in the form of question-answers.

Q. : What led you to write this book ?

A. : I felt the necessity of acquainting our students, and the common music lovers with indispensible information about the basic features of our Hindustani classical music in a single volume which includes a convenient system of notation.

After turning the pages of my manuscripts he asked me :

Q. : Why have you attempted to devise a new system of notation in the name of major-minor consonantal system, especially when Pt. Bhatkhande has already

established a system of notation ?

I promptly quoted to him the paragraph from Pt. Bhatkhande's book which the author himself wrote: "I feel happy at the thought that I have been able to mould a model for my successors to improve upon and to perfect; and I cannot but hope that in a few years more, there will be an easy system for the instruction of our music, which will lend itself to mass education". In fact, I was able to impress upon Ratanjankarji the usefulness of a few more essential elements that I introduced in the sphere of notation like key-note signature, tempo-signature, signs for andolan, gamak, accent, soft, loud, long notes, short notes, return to any passage from anywhere in the musical score, repetition, omissions and replacements during repetitions, etc. I had even provided for instrumentation, i.e. finger techniques for both hands on stringed, reed, wind and percussion instruments. This facilitates correspondence courses too. Besides, I explained that my system was simple enough for students to memorise because of the usage of capital and small Roman alphabets, thus doing away with extra signs for 'viktrita' swaras, and so on.

Q. : Why in the same volume you have dealt with the technique of playing harmonium and the explanation of the 'sruti' system?

A. : The average people cannot think of God as 'nirakar' (formless) but they need something that is visually clear to concentrate on; hence from the initial use of harmonium to the switching over to tanpura and developing the concept of 'sruti'.

He was satisfied with my answer and wrote his comment then and there, as follows :

"I have gone through Shri. Nikhil Jyoti Ghosh's "The Fundamentals of Raga and Tala with a new system of notation"... from the few pages of the book, I have gone through I find that it will be an interesting and useful guide to young students of Hindustani Music".

Again after a few days I called on him with the idea of seeking his active support for my new project of compiling and publishing an Encyclopaedia of Music, Dance and Drama in India. He was apparently taken aback by the magnitude of the project and said, "It is a suicidal attempt especially for a performing artiste like you. You need an army of scholars, huge funds, necessary equipment and above all a spacious premises. You would be better off by withdrawing this idea and being content with your vast subject of tabla". I could see in his eyes his affection and concern for me. Disappointed, I left. But my obsession for the Encyclopaedia reached dizzy heights when everyday I myself was confronted with the "whats, whens, wheres, whys, hows, and whos" of the music of the sub-continent. I made another visit to him a few days later. He received me with a mixed feeling. This time I asked him :

Q. : Annaji, I understand this is a difficult and challenging project, but do you believe that this is an urgent necessity in our country ?

A. : Of course, The entire country is in the dark. There is chaos and confusion as far as music and musicological information is concerned, in comparison to West where information is well-organised.
Q. : Did anyone make a similar attempt in our country ?
A. : No. Not of the magnitude you are conceiving except that the Bharat Kosh in Sanskrit is a treatise. The Sangeet Natak Akademi, under Dr. Raghavan initiated a similar attempt but gave up and are working on 'Who's Who' directory in music.
Q. : But Anna, do you agree that a humble beginning on scientific grounds could be initiated by someone at some place without further delay ? It may not be completed in one's life time, the subsequent generations could pick up the thread.
A. : Yes. Only a beginning could be made.
Q. : If I begin, will you help me ?
A. : Yes.

I had already started writing some entries on my own, with the help of my small personal library and my experiences with senior scholars and performing musicians especially to fulfil requirements of my own students, for I believed that 'charity begins at home'. I asked Anna to scrutinise those papers and gradually started sending bunch after bunch with my assistant Shri. P.N. Gatlewar. Anna's encouragement and the progress of my Encyclopaedia work went hand-in-hand. Soon he agreed to my request to become the Chairman of the Editorial Board of the Project. Meanwhile I had already received support and participation from revered scholars like Prof. Sambamoorthy and Swami Prajnananda.

In the winter of early 1973, during one of my concert tours of Calcutta, I organised a large meeting at Mr. Hemmad's residence in Ballygunge where all the leading musicologists of the city participated. They included Kumar Bahadur Birendra Kishor Roy Choudhury, the scholarly prince of Gouripur State, Shri Rajeshwar Mitra, Shri Bimalakanta Roy Choudhury, Shri Sachindranath Mitra, Shri. Jnan Prakash Ghosh and many others. My proposals for the Encyclopaedia scheme were thoroughly discussed, and accepted, decisions made and passed in the meeting, chaired by Shri. Nandakishor Roy Choudhury and everyone whole heartedly pledged full support to the project. It was during this trip that giants like Satyen Bose (of the Einstein-Bose fame) and National Professor Dr. Suniti Kumar Chatterjee offered their participation. Armed with overwhelming encouragement and boundless optimism, I returned to Bombay and called a series of meetings of the Editorial Board under Anna's chairmanship at his residence, where he most enthusiastically conducted the meetings. My already drawn-up scheme was revised and several entries were added to the list, in alphabetical order.

Today, thirty years since my conceiving the Encyclopaedia Project, and seventeen years since the sad demise of Anna, we have made remarkable progress despite the tremendous shortage of financial encouragement and the successive demise of dozens of scholars and maestros who were sources of invaluable information.

Had Anna lived today, he would have been proud to see the dedicated participation of his worthy disciple K.G. Ginde and Dinkar Kaikini as members of our Editorial Board. We all miss him !

Nikhil Ghosh

●

Nikhil Ghosh
A/6, 10th Road, Juhu Scheme,
Vile Parle (West), Bombay-400 049.

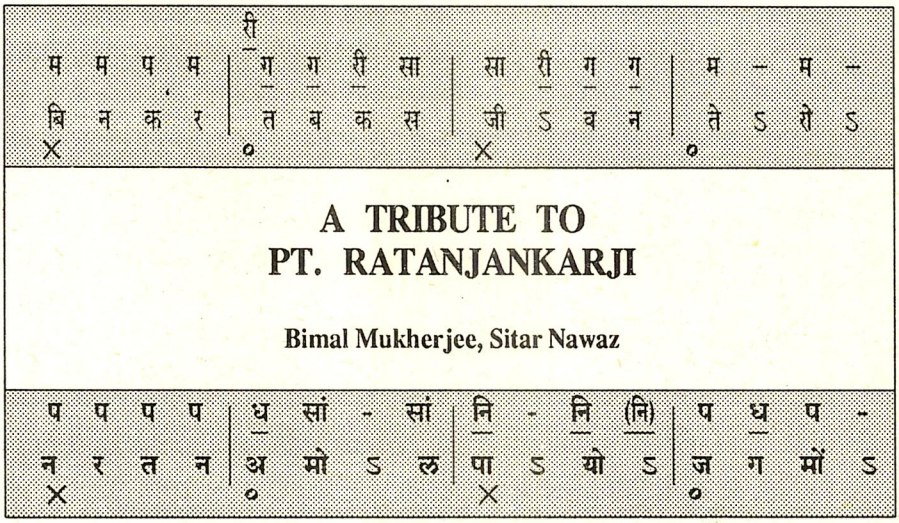

[A retired IAS Officer from the Govt. of West Bengal. Learnt Sitar under Jamalludin Binkar of Jaipur Gharana A versatile sitar player. Had close association with Baroda Durbar Musicians.]

Pandit Ratanjankar of revered memory has been amongst the brightest stars to shine on the firmament of Indian Classical Music as a performer, musicologist, teacher and composer all combined in one. No wonder that he is respectfully remembered as a phenomenon, an institution in himself. He was, indeed, a solid and strong link between musical traditions of the earlier 20th Century and post independence developments in the field of music. Classical music has an ancient tradition which carried within itself the deep subconsciousness and aesthetic sensibility of the Indian mind besides being an embodiment of the Indian soul.

These are basic premises from which Ratanjankar's Guru Pandit V.N. Bhatkhande had started his journies and researches into music. In this ancient Guru Shishya parampara of ours, there has to be a preacher or teacher and there has to be a practitioner or disciple. This is exactly the relationship that existed between Pt. Bhatkhande and Pt. Ratanjankar like the one between revered Paramhansadev Ramakrishna and Swami Vivekananda. Bhatkhande had entered into the depths of our musical traditions and musicology and evolved a structure, a system, a set of rules which brought order into a near chaotic musical world of Practice with almost fanatical supporters behind. Bhatkhande's epic work needed a practitioner, a translator or a missionary and perhaps it was destined that Pt. Ratanjankar would assume and fulfil this historic role.

The Lucknow Marris College — a milestone of achievement in Pt. Bhatkhande's many-sided life — was nurtured and really brought into life by Pt. Ratanjankar.

In a sense it can be likened almost to Kaviguru Tagore's Shantiniketan. From Marris College, scientific musical training started and the movement of spreading and teaching music started and spear-headed from there. Many illustrious performers and musicologists emerged from Lucknow and carried the message of Bhatkhande to all corners of India. This was made possible by the labours and missionary zeal of Pt. Ratanjankar — who headed Marris College for long 28 years.

Pt. Ratanjankar was a great performer himself in the finest classical tradition and his 'gayaki' starting with 'Nom Tom' was a brilliant synthesis of the Gwalior, Agra and Rampur gharanas in which he was trained by Pt. Bhatkhande and Ustad Fayyaz Khan of Agra and many others. I have heard him personally as also long radio broadcasts. He had a distinctive style of his own. Once I had the good fortune of performing before him at Ravindra Sadan, Calcutta, when I was playing Alap and Jod in Raga Miya-ki-Malhar. The use of Komal Gandhar and Dhaivat in the 'Vakra', attracted his notice and soon after my recital it was both a surprise and encouragement to see the old man accompanied by Dhrupad Singer Ustad Aminuddin Dagar coming to the stage to give me 'Saabash' and enquire about my talim and background. When I mentioned about my Ustad Abid Hussain and his father Jamalludin Binkar and Ustad Faiyyaz Khan of Baroda he hugged me endearingly. Summoning up courage, I mentioned that my late father Shri. Amulya Chandra Mukherjee as a Senior Durbari Officer of Baroda State had witnessed his "Ganda Bandhan" by Ustad Faiyyaz Khan at the instance of Maharaja Sayaji Rao Gaikwad. Pandit Ratanjankar was really overwhelmed that a young artist knew so much about him and he blessed me by placing his hand over my head. Shall we, in these changed times, ever see a musician of his stature openly coming out in praise of talim and encouraging junior artistes ? They were really great men in mind, spirit, attitude and behaviour.

Pandit Ratanjankar's 'experimentation' with music and truth continued all his life. And it was both the contemporary times and posterity which richly benefitted from the many beautiful bandishs he composed apart from making new raga formulations. In life, he had a chequered career and he had his education in bits and snatches at Bombay, Baroda, Ahmedabad and it was after a real struggle that he graduated from Wilson College., Bombay. At last he was a graduate musician in those days — a rarity even in those times barring perhaps Pandit Omkarnath Thakur and Ustad Rahimuddin Dagar Dhrupadia who were Graduates also. It is clear that with his sharp intellect and educational bent of mind Ratanjankar was destined to translate into practice the great ideas of Pt. Bhatkhande. The time has now come when the world of classical music must openly acknowledge its debt of gratitude to Pt. Ratanjankar as it has done to persons like Pt. Bhatkhande and Pt. Vishnu Digambar Paluskar.

Pt. Ratanjankar was an orator and writer of great distinction. He followed Pt. Bhatkhande, so closely that in his book "Pandit Bhatkhande" he wrote "He conducted Law Classes in Bombay. He composed little verses on the clauses of the Evidence Act, set them to music and taught them in the classes". Pt. Ratanjankar continued his life's mission exactly on the lines laid down by Pt. Bhatkhande — (1) Collecting

musical treasures; (2) Consolidating theory; (3) Giving shape to methodology and status to music; (4) Using Conferences & Sammellans as a tool and strategy to disseminate music; (5) Following the Notation System both as a means of teaching and music preservations; (6) Overcoming Social Taboos. Pt. Ratanjankar visibly helped to create a class of first rate educated musicians led by persons like Dr. K.G. Ginde and many others. By this he helped to raise the social status and recognition of musicians as an accepted and respected group of persons in our taboo-ridden society. This was great pioneering effort which must be distinguished from the recognition which musicians enjoy in independent India today for which changed values, social factors, changed tastes, changed character of patronage are largely responsible.

Pandit Ratanjankar authored many books but of great value was his tenacity in incorporating seminar discussions on music as a regular feature of the music conferences. It is sad, indeed, that this trend has been abandoned much to the detriment of classical music, its practice and presentation. These discussions had an invisible role in indirectly warning errant performers not to deflect from tradition and to the general body of listeners not to be taken in by adventurist musicians. More than in the past, such discussions of open house type with widespread participation are really necessary today to restore classical music to its position of prestige and glory.

Let us conclude with a famous saying which was said about a Western literary genius "There was but one Ratanjankar only, and let his name be praised.".

Bimal Mukherjee, Sitar Nawaz

Bimal Mukherjee, Sitar Nawaz
181, "B" Block, Lake Town, Calcutta 700 089.

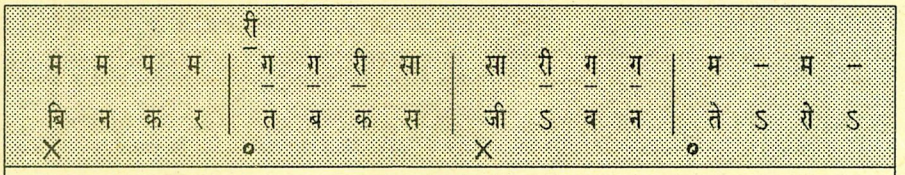

PADMA BHUSHAN — DR. S.N. RATANJANKAR THE GREAT MUSICIAN

Premlata Puri, New Delhi
(Student of Pt. Ratanjankar and Pt. Dinkar Kaikini)

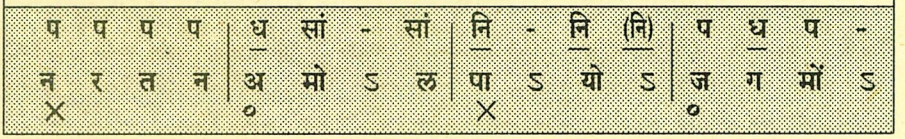

[A great master, guru, a creative genius was Pandit S.N. Ratanjankar. A true artist whose art was not limited to the execution of mere technical skills, but one who derived inspiration from the depths of philosophical concepts and thoughts, eternal truths and values. His was the true Indian vision which embraces every aspect of creativity expressing it through word, sound and rhythm.]

He wore his greatness and knowledge lightly, one became aware of the levels, the magnitude and multi-facetedness of his personality only on coming close to him. He was an erudite sanskrit scholar, an eminent musician and musicologist, a vaggeyakar par excellence — a teacher of a kind, only those who had the good fortune of studying under him could fathom. For the truly dedicated he opened up the great store house of his wealth of knowledge and gave with a generosity unknown to man. He brought to the study of music, the multi-disciplinary approach, to look at creativity in the social context of man, and the society from which it stems.

His work-schedule was very demanding, his daily routine had no time for rest. He taught us music in the mornings, worked in office after lunch, teaching again in the evening and finally after dinner began serious sessions with discussions on the interpretation of musical texts and other aspects of music. This was the time when research students and other musicians and scholars worked with him.

He was a very well read person and his interests varied from serious literature to sports and even to children's stories. All the latest journals and books were read by him. It was as if he was driven by some divine energy housed in his small physical frame.

I had the unique opportunity of being with him in the later years of his life when he was starting a new Music University at Khairagarh. At an age when most people seek retirement from active life he took upon himself the challenge of setting up this University. Though, all his life he had also been involved in administration as Principal of the Bhatkhande Music College, Lucknow, starting a Music University was absolutely a new area which involved working with Government at all levels right from the Governor, Chief Minister, Ministers and Members of the University Grants Commission. He did all this and today the result of his efforts is the Indira Kala Sangeet Vishwa Vidyalaya.

He would travel to Bhopal, the capital of Madhya Pradesh for official work nearly twice a month; not for him the leisure of a comfortable journey. He would carry his whole office paraphernalia — even type letters in the train and deal with files. And then suddenly the artist within him would take over. He would compose Khyals, Dhrupads — beautiful literary pieces and set them to music. He would even compose a new raga if in the mood to do so. He would write, notate and on the spot teach it to a willing student who happened to be fortunate enough to be travelling with him. During those days one such fortunate and frequent traveller with him was myself. Not only to Bhopal, but I also travelled with him to perform at Bhilai, Panchamarhi, in honour of the then President of India, Dr. Rajendra Prasad, Nagpur, Delhi and many other places.

Two most memorable events in my life with Res. Anna Sahib, as this great master was affectionately called, were participating in the two operas that he had composed — Goverdhan Uddhar in Braj Bhasha and Shiva Mangalam in Sanskrit. When Goverdhan Uddhar was performed at Khairagarh with a set of rather raw new students, I performed the role of Radha. Having had no experience in acting, I was very nervous. The many ways in which he brought out my ability to communicate through sound, movement and abhinaya were a great source of self-discovery for me. Even more difficult was the opera in sanskrit — Shiva Mangalam. Many of the main characters had collected at Khairagarh for training. It is only a great Master like him who could have worked with us for such long hours — teaching us the correct pronunciation, intonation of the words, which were set to intricate musical combinations. The perfectionist in him was not satisfied unless each murki, gamak, and the pitch of the note was at its purest. He taught us how we could convey the Bhava or Rasa in the song, through singing and through facial and body gestures. Each one of us had one role to try and perfect but he had twenty artists to prepare for the Opera. Not once did he let any of us feel that we were taxing his energies to such a great extent. At that time I had not formally studied Sanskrit, my role of Rati was a long one and involved subtle acting skills as I had to convey the sorrow, the shock, the anger of Rati at losing her husband Kamadev when his body had turned to ash.

During the training, I could feel that I was not succeeding in projecting the character as I was very self conscious. I will never forget when, just a few days before the show which was put up at Ujjain for Kalidas Samaroh he made

me perform in front of a mirror. All he said was — "Do you really feel the loss, the sorrow that you wish to convey ? Let Rati's soul emerge from the body of Premlata". It was with his blessings that the Rati Vilaap brought tears to the eyes of many in the learned audience. It was his music, his spirit that had taken command momentarily. The programme was such a success — each artist giving of his or her best, that Anna Sahib was invited by AIR Bombay to record the whole opera.

He improved the quality of life of many — he enriched our music and took forward very successfully the task started by his mentor the great Bhatkhande. He gave music its pride of place in our cultural life. Today many of his disciples all over the country are carrying on his work. He was the beakon light — that brought out the inner potential of many, and showed the path to perfection.

What can one say of such beings who descend on this earth, who with their grace and beauty are the embodiment of "**Satyam Shivam Sundaram**".,

He was an institution, a seer, a sage, a guru. Having sat under the shade of this great tree with each branch bearing a different fruit, each flower with a different colour and fragrance, each leaf a different hue, it is possible for me even today to hear the music of the wind passing through the branches and to delight in the variety of flowers and colours, shapes and forms, sounds and rhythms.

Whenever I feel depleted intellectually or emotionally or am at a loss amidst the many demands of life, somewhere within me the spirit of the great Anna Sahib reminds me to "look into the mirror and seek the true soul, shed the 'Aham' and go about the work at hand".

Premlata Puri

•

Premlata Puri
Director, Centre for Cultural Resources & Training,
New Delhi- 110 001.

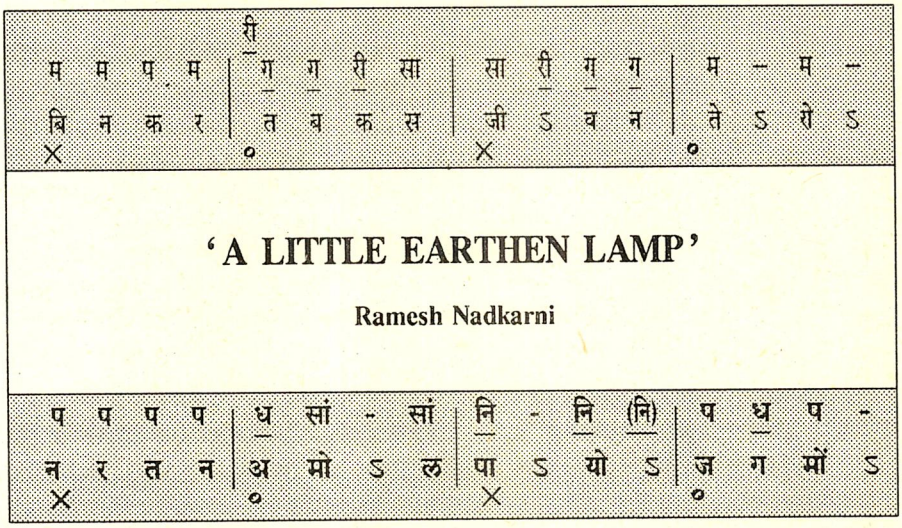

[A disciple of Ustad Amanali Khan of Bendhi Bazar Gharana. Served All India Radio for many years as producer in Music.]

"Who will carry on my work ?" asked the setting sun.
"I will do what I can, O my master", said a little earthen lamp".

Rabindranath Tagore

As far back as in the late Thirties I had heard from effusive music lovers of the great Pied Piper of Lucknow who drew unto him talent from all corners of the country — Shirali, Bangalore, Bombay, Nagpur, Calcutta, Jabalpur and God knows whither. Only no road from Bankikodla led to Lucknow and learning from him reminded one of my unfulfilled dreams. The frail, fragile figure worked on and on tirelessly for years in Marris College from morn till night, teaching, singing and writing. An indomitable spirit in a feeble frame, he worked like one possessed, a man with a purpose who had a great legacy handed over to him by his master Bhatkhande. Shrikrishna Narayan had to carry on from where Vishnu Narayan had left off. He had inherited from his Guru three great gifts — a vast treasure of music, an insatiable thirst for knowledge and an undying passion for work. He worked as spontaneously as one breathed, to rest only for short hours in the night to wake up to another day of work. In fact he lived in the Principal's room for years like an anchorite in a cell away from his family. He imparted music to innumerable aspirants and inspired them with an intense zeal for music — Chidanand Nagarkar, S.C.R. Bhat, R.L. Roy, Pahadi Sanyal, Chinmoy Lahiri, Sumati Mutatkar, K.G. Ginde, Dinkar Kaikini, P.N. Chinchore, Govindrao

Dantale, Sushila Mishra, Sita Sharan Singh — it is an interminable Roll Call of Honour. Many went to him and got what they sought.

I had my first glimpse of the genius of Pt. Ratanjankar when I heard his 'Salagavarali' from Kumar Gandharva way back in the Forties. Kumar was singing his compositions with an intensity of passion that never failed to make an impact on the listener. I came under its spell and sang the same raga, though haltingly, in a Sunday morning concert in Baburao Gokhale's Maharashtra Sangeet Vidyalaya which, to me, was my Lucknow. A couple of years later, I had a second glimpse of the genius of the Master when I heard his compositions in Kedar Bahar, Narayani and Barawa in the hypnotic voice of his eminent student 'Chiddu'. This young student also was imbued with the passion of his master and sang with a charm all his own. Shortly after these glimpses of Ratanjankar's genius from two inspired voices, I saw the Master in person in his residence at Cumballa Hill, Bombay, where he spent his summer vacations. In his Bombay residence every Sunday morning. Pt. Ratanjankar sang in an informal musical soiree before a small gathering of connoiseurs. I went with my uncle every Sunday to partake of this feast of music. People have a mistaken notion that Ratanjankar was a 'mere' teacher and no performer. Nothing could be farther from the truth. He had learnt his music from 'Aftaab-E-Mousiqui' Ustad Faiyaz Khan. He did not have the roaring voice of his Ustad but his voice had a sonorous ring and mellifluous clarity. It was like hearing the voice of the sea in a shell. Sitaram Fatarphekar used to accompany him on the tabla in the Sunday concerts and I still carry with me the impression of his Bilaskhani Todi, Jaunpuri and Miya ki Todi that I heard in those bygone days. I went every Sunday morning to Cumballa Hill as one goes to Church. I heard him in another memorable mehfil on the occasion of Diwali in 1958 at Dr. Keskar's residence in Delhi. Dr. Keskar had invited, to sing at his residence, a few of the artists who had converged in Delhi to participate in the Radio Sangeet Sammellan. In the audience were Thakur Jaidev Singh, Devendra Murdeshwar, Sumati Mutatkar besides many young luminaries. After a Multani from V.G. Jog followed by an unforgettable rendering of Puriya Dhanshree by Manik Verma, Ratanjankar sang Kafi Kanada and Shankara which were well worth going miles to hear. His music had simplicity, grace, precision and a delectable charm and listening to him was not mere entertainment but an experience to cherish.

I am not writing a biographical sketch of Pt. Ratanjankar nor is this a desultory dissertation meant to evaluate his work which is far too enormous for me to assess. Like any great man, he was much misunderstood and much maligned. This was largely due to certain traits in his character. The physically puny figure suffered from a complex which inverted itself in an air of assertiveness verging on aggression. Sometimes one saw a stiffness in his demeanour as though he were protecting himself from the liberty that anyone might take with him. This mask was necessary to save himself from the inroads a stranger might make on his precious time which had always to be utilised for creative work. A creative artists cannot afford to be social or sociable. He has to keep a barbed wire

around his compound. Again, he had no patience with mediocrity and musical charlatans and perhaps, if he could not show his contempt for them, he did not hide his indifference. This attitude won him few friends and many foes. Few knew his sincerity and paternal affection for those who sought his shelter to drink deep at the fount of music. His appointment as the Chairman of Central Audition Panel was the culminating factor contributing to his unpopularity in certain quarters. Though he was fair and just in his assessment, all unsuccessful artistes had a grouse against him and joined in a chorus of oblique in his name. A creative genius like him should not have taken up this unpleasant work. Assessing is an asinine assignment which no creative genius should take up. It is the appanage of lower calibre. He needs no encomiums from anyone nor one's disparaging remarks about him take away from his work, which stands as a monument to his greatness and glory.

Pt. Ratanjankar to my mind is the greatest composer of the century. The very enormity of his work as 'Vaaggeyekar' is staggering and the excellence of his compositions from the standpoint of diction and musical value is inestimable. Nearly 450 compositions have already been published in Abhinava Geet Manjari in three volumes and another 400 are yet to be published. It is a luxuriant pasture for music lover to graze, providing ever-satisfying nourishment and vitality. There are compositions in 'Prachalita Ragas' and 'Aprachalita Ragas' such as Kedarnat, Gandhari, Jaitkalyan, Triveni, Deepak, Devsakh, Natnarayan, Devigiri, Sanjgiri, Bilhari, Malavi, Savani Kedar, Rajani-Kalyan, Hem Nat, Charukeshi, Khat, Laxmi Todi, Lachari Todi and so on. There are Drupads, Khyals, Tap Khayals, Taranas and Varnams. His compositions evince the author's keen awareness of vocabulary, knowledge of Hindi and kindred dialects, even Punjabi as in 'Dilda Pyara Shona' (Bihag). His diction in Sanskrit compositions, which can make a Sanskrit scholar turn green with envy, could be sampled from his 'Tansen Prashasti' which is in itself a superb Sanskrit literary piece in praise of the immortal singer Tansen. In Jaitshree there is a beautiful Sanskrit composition commemorating the martyrdom of Mahatma Gandhi. His vocabulary in Hindi is inexhaustible — words such as Dularawe, Jhoolave, Suhave, Pharakave, Hilarave, Malhave appear in the composition in Mishra Pahadi. I have not hitherto seen the word Malhave (meaning the caressing sound made to appease a crying child) used in a Khayal. He has used many words besides the hackneyed shopworm words generally used in a Khayal. I have been carried away by the lilting rhythms of many a composition. I am tempted to give the text of the composition in Kedar Bahar :

Madamāte Aāye Ata Arasaye
Kaun Sakhi Anurāga Badhāye
Nain Uninde Tana Men Range Ho
Chaal Chalata Dagamāye Piya
Kaho Kahaan Te Raina Gawāye.

The rhythm of the song is as captivating as the melodic pattern is fascinating. The musical pattern of "Dagamāye Piya" brings to one's mind the faltering gait

of an amorous person, homebound after a night of indiscreet indulgence. I should one day start writing a treatise on his compositions which would entail ardous research on his vast productions.

In a recent mehfil I heard the violin recital of Vasant Ranade. His rendering of Jhinjoti bore the unmistakable stamp of Ratanjankar — the characteristic phrases of the Raga which like the strokes of the chisel made the contours of the image sharper and sharper and again hypnotic the rhythm of the strokes in 'Mero Man Sakhi'. Vasant told me that he learnt a lot from Pt. Ratanjankar when he was a V.C. at Khairagarh. I told him that to me V.C. stands not for Vice Chancellor but for 'Vaaggeyakar', the supreme 'Vaaggeyakar' — the one without a second.

The earthen lamp, which took over from the setting sun, has in its turn set many a lamp glowing. His numerous disciples have been doing commendable work wherever they are placed — it is an unending festival of lights.

P.S. I should add a small post-script which many readers may find interesting, more interesting than the script. I once caught the Master in a rare relaxed mood — not the stiff front, tilted head and hardpressed lips — when I noted a childlike mischievous streak in the man. In some function in Vallabhdas Sangeet Vidyalaya he beckoned me with his hand calling me 'Oh Hansadhwani'. I was, he must have noticed, repeating Hansadhawani very often like some politician repeating a vote-catching slogan. It cured me of my mania for Hansadhwani. I told myself it will be my Hansageet — my swan song!

Ramesh Nadkarni

•

Ramesh Nadkarni
13/A, Yojana Housing Society,
Jogeshwari (East), Bombay 400 060.

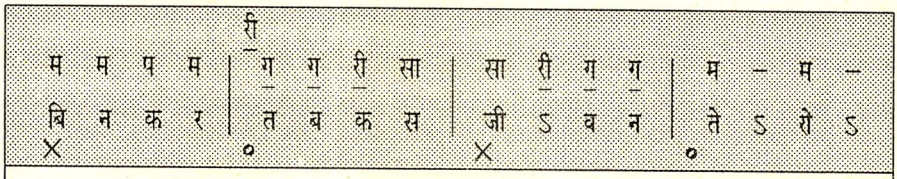

ANECDOTES OF DR. S.N. RATANJANKAR

V.S. Nigam

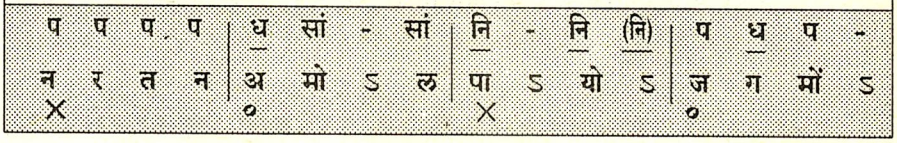

[A sitar graduate of Bhatkhande Sangeet Vidyapeeth Lucknow. Author of many books of theory of music. Had association with Acharya Ratanjankarji.

Dr. S.N. Ratanjankar was a musician of versatile genius. He was a singer of the first rank. He was perfectly adept in rendering Ragas marvellously and had the capacity to captivate the audience and keep them spell bound by his magnetic voice and masterly singing. He had full command over Ragdari Sangeet and could sing even rare Ragas for hours together. He knew full well the fine subtleties of Ragas and could produce them in an enchanting manner. He was well versed in rendering ragas in just and correct intonations and was a past master in moving up and down specially the Swaras komal Re, Ga, Dha, Ni and Teevra Ma in the course of the development of Ragas. In fact, he was second to none in this regard. In a word, he was a unique singer of Ragdari Sangeet in all respects.

His estimate of the USTADS of Music

It was in 1936. I was a student of Marris Music College, Lucknow and was having my lessons on Sitar from my revered Ustad Hamid Husain Khan. Somehow I was not satisfied with the models of the Gats given to me to learn and practice. I felt disheartened and wrote about it to Dr. S.N. Ratanjankar at Bombay. He very kindly replied to me as under :

Bombay, July 2, 1936.

Dear Mr. Nigam

Glad to hear from you. Yes, I am quite well. Thanks.

I understand your disappointment. You can imagine now the trials and disappointments which Prof. Bhatkhandeji must have had to pass through in gathering information and practical lessons in music. He too was a young Lawyer like yourself and interested in music. But please carry on. After all in music and in every art, for the matter of that, personality counts much more than colours..... These Ustads are all of them unfathomable like proud deities which will take the life of a person and even then will not be propitiated..... The gats are not very sweet you say. I agree with you that you should have the best models before you. I will discuss this with Hamid Husain Khan when I return.

(Wager between him (Ratanjankar) and Hamid Hussain Khan)

I had a discussion with Hamid Husain Khan when we were at Delhi and I told him point blank just to tickle him into doing his work better. That not having played Sitar in my life I could still get the better of him if I undertake to conduct the Sitar classes. He does not seem to believe in me. He might speak to you about this if you touch him on that point. A sort of wager has been made between him and myself. I shall try not to give him the palm if I really begin to work.

(About my joining Vocal Class)

In your case it is not absolutely necessary now for you to join the vocal classes. You have sufficient Swaragyan ... keep away from cheap music. I will try to give you some hints about Raga development when we meet.

With best wishes,

Yours sincerely,

Ratanjankar, S.N.

My test for holding theory classes

It was in 1940 that Dr. Ratanjankar asked me to hold theory classes in the evening on part-time basis. But before my appointment as a Lecturer in theory he called me to give a lecture to 5th year vocal class in his room and in his presence. It was an ordeal, indeed, to do so in his presence. The topics given were : "Equality of shrutis as propounded by Sri Bharat" and "Location of notes of Pt. Sriniwas and Manjarikar on the stretched wire of a Veena". It was a hard task particularly in his presence. However, by the grace of God I succeeded in my attempt. And next day I was given an order to conduct theory classes, both Vocal and Instrumental, as a part-time Lecturer. I felt pride that my lecture was approved by the learned Principal and an authority on the theory of music.

Dr. Ratanjankar's method of holding 1st Year Vocal Class

Once in 1943 when I was a teacher in the College I respectfully pointed out to Dr. Ratanjankar that in 1st Year Vocal Class conducted by a lady teacher the 'Sargam' of Raga Bilawal had been finished in two days and it was intended to teach the song of the said Raga. It was the month of August. The session had started from July. And six months are required for practising Swara-Sadhan and Swaragyan. After all why such a speed ?

Dr. Ratanjankar wrote to me as under :-

"Dear Mr. Nigam : I am glad to note that you have seen cases of such haste being made in the classes. Now kindly let me know which is the class which wants to run so quickly as you point out. You will be glad to know that I have not taught my 1st Year Class the Shuddha Saptak completely yet. I have done just **'Sa, Ga, Pa, Ni, and Pa, Ni, Sa, Ga, Pa'** I shall certainly be glad to correct the case if you point out to me."

(Sd/-)

Dr. Ratanjankar's impression about me and others

It was in 1937 that I was the President of the Marris Music College Students Union. A drama was to be staged. It was successfully staged in the "Veena Hall" on the premises of the College. After the drama I just asked him about his impression of me in organising the drama. He wrote to me as under :

"As to my impression about yourself please know that I never hold any ideas about any person. I never give any importance to persons. I value their actions. A man may be disliked by any body but as long as he is needful to my purpose I never look at his habits and his way. No man is better than another nor worse in my eyes. I do not know my ownself even. At times I love myself and at another I deem myself my own enemy. So never think of any wrong or right idea about anybody in my mind. You will always find me the same to each and everybody". (9-3-37)

The above letter of his amply gives an impression about his estimate of a person.

His aversion to his own praise

Once in 1947 I had been to Banaras (now Varanasi) to conduct the practical examinations of music. I was staying in a hotel, Some musicians came to me. We had a general talk on music and also about some famous musicians. They wanted to have my views. I just told them in plain words that at present Dr. S.N. Ratanjankar is the singer of the first rank the like of whom cannot be found. He is par excellence in rendering Ragas in the correct form and has the capacity to captivate the audience and keep them spell bound by his marvellous performance. I wrote about all this to Dr. Ratanjankar. He wrote to me in reply as under :—

"You need not have raised me to the 7th Heaven. I am not pleased with my own praises and much less with my comparison between one musician and another. I do not want myself to be compared with anybody. I even do not want to be classed among professional musicians. It is not my business to please people by a song. I do not care if anybody is or is not pleased with it. So please never talk about my music and never try to establish my superiority over others. You can never succeed in such attempts. Art is a matter of taste. And when taste is concerned nobody can say definitely which art is good and which is not".

(Sd/-) (21-3-47)

His inspection of my class

Once I was holding 5th Year Theory Class. The topic was 'Tappa' singing. Dr. Ratanjankar came to my class and sat down to watch as to what I was teaching. After my class was over he called me to his room. He asked me wherefrom did I get the idea that Tappa was formerly sung by the camel drivers of the Punjab. I replied that I had read it in the source book entitled 'Madan-ul-Moosiqi' written by — Hakim Mohammad Karam Imam Khan. I atonce went to the library brought the book and read out to him about 'Tappa'. He was quite satisfied. After that he would call me to his room once in a week to read out to him certain topics from the said book and he would take down his own notes. This lasted for a couple of months.

His innate love for the Non-stop Music Programme of 72 hours

The non-stop music programme lasting for full 72 hours during the Anniversary of revered Pandit Bhatkhandeji was his own creation. It was a grand success every year. The performance of Dr. Ratanjankar was always captivating. What more whenever any artist failed to turn up at his fixed time Dr. Ratanjankar would opt to sitdown on the dias in his place and give his grand performance. Such was his love for the Sangeet Dhara. The programme would end in the morning of 19th September with the performance of Dr. Ratanjankar with the chhota khyal of Raga Bhairavi : 'Bhawani Dayani' etc., which was simply captivating kept the audience spell-bound. Alas ! the said Non-stop Music Programme (Sangeet Dhara) is no more.

Ustad and Shagird sing together

Once there was a music programme of Ustad Faiyaz Khan Saheb — 'Aftab-e-Mousiqi' in the Ganga Prasad Memorial Hall, Lucknow. The programme was about to start. The Ustad asked Dr. Ratanjankar to come to the dias to sing with him and remarked: 'Aaj Ustad aur Shagird dono-eksath gayenge' Dr. Ratanjankar sat on the dias with the Tanpura behind Faiyaz Khan. The song was in Raga Khamaj : 'Na Manungi Na Manungi Na Manungi' etc. The entire performance was a grand success because both the renowed Ustad and Shagird sang together. It was, indeed, a memorable event.

His love and respect for all artists alike

Dr. Ratanjankar had full love and respect for all artists alike. He listened to their performances, quite patiently and was all praise for their performance. Unlike other artists he never found fault with their performance. He was not like those orthodox Ustads who do not give out their art to their students. Instead Dr. Ratanjankar was perfectly liberal and imparted training to his students whole heartedly.

V.S. Nigam

V.S. Nigam
M.A., LL.B., B.Mus., Director & Controller
of Examinations Bhatkhande Sangit Vidyapeeth, Lucknow

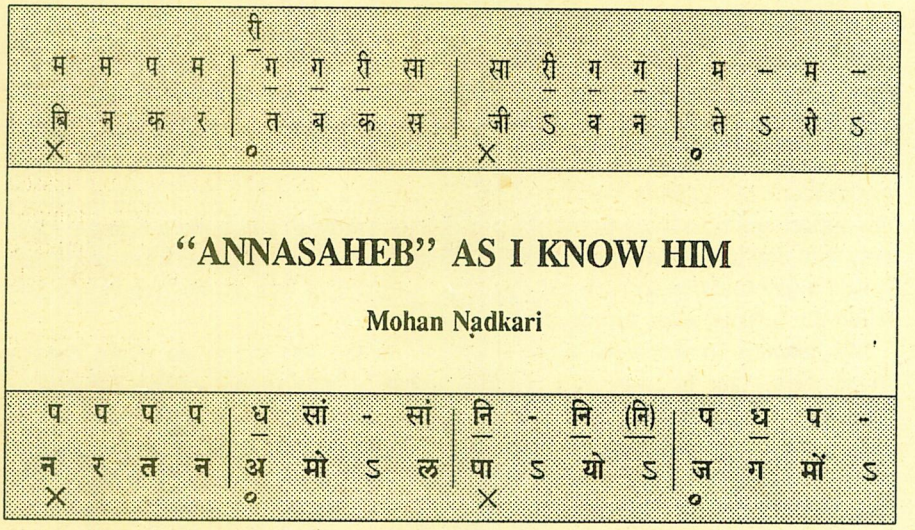

[*A renowned music critic and journalist by profession. Has contributed valuable articles on music to various prestigious journals and periodicals of Times of India Group. Has had occasions to listen to stalwarts over the last sixty years or so. Author of many books on music.*]

When my personal friend 'Chhotoo' Ginde, suggested that I write about my reminisceneces of "Annasaheb" Ratanjankar, I was a little hesitant. In the first place, although the term "reminiscence" connotes the process of remembering significant events or episodes of the past or present, which relate to an individual, the dictionary meaning has to be suitably modified or adopted in keeping with the spirit of the context in which it is intended to be narrated. More often than not, as in the case of obituary tribute to men of eminence, it is only the brighter side of their personality which is sought to be spotlighted. At least this is so in most cases.

Secondly, if one has to be fair, dispassionate and objective in giving such tributes and reminiscences, it should not be impertinent on the part of the writer or narrator to do so, specially when he happens to have been associated in some way with the concerned celebrity. Oddly, the reminiscences of my knowledge of Annasaheb as a person are not all savoury. On most occasions, my reaction to his attitude towards me and my writing on music was one of despair, disappointment and even resentment. This is precisely what made me rather hesitant to accept Chotoo's suggestion to record my reminiscences about Annasaheb the man. My meetings with him were few and brief, but were such as I would never forget them.

Before I come to 'face-to-face' encounters with the little, great man, I am

tempted to travel back in time to the early 'forties', when I had my 'listening' encounter with him began. Although I was familiar with his name because of its mention on the title page of Bhatkhande's monumental series on Hindustani music, my musical acquaintance came through his radio broadcast, mostly from Lucknow. I had already become voracious listener of programmes of Hindustani music from the various stations of AIR even as a teenager and I seldom missed the opportunities to listen to even far-off stations most of which were then equipped only with medium-wave transmission facilities. If weather conditions were propitious, it was a joy to listen to such programmes. The delight was all the greater specially when the artistes were top-notchers.

My listening impressions of Annasaheb's recitals left me in no doubt even in those days, that he was one of those great artistes to be looked forward to with much anticipation. Needless to say, I rarely missed his broadcasts.

In between came interludes of recorded music, which were specially designed by AIR for disc-lovers. One day I happened to tune into a 10 minute radio presentation of 78 rpm discs recorded by the veteran. I hardly knew I was in for a shock. The music left me cold. I simply could not persuade myself to believe that it was the same veteran whose radio recitals were invariably so masterful.

As I learnt, later by years of listening experience, there is difference in technique between the presentation of concert music and that of its recording for a three-minute commercial disc. I believe that there is more of craftmanship involved in singing for a time-bound disc. I also noticed that even some of the greatest masters of mehfil music have so miserably failed in their disc performances, while mediocres would seem to have scored over them by cleverly tailoring their presentations perfectly to recording purposes and that such discs were sold in the music market like hot cakes.

The opportunity, to listen to a live recital of Annasaheb came my way in the late 'forties', when AIR Bombay featured him at a 90 minute morning concert in the presence of an invited audience. This was the first time I saw him. It came to me as a revelation, in that this slightly-built maestro was capable of creating music of such immense dimensions. I still vividly remember his *Shivmat-Bhairav* and *Khat,* which were part of his morning repertoire at this recital. I had occasions to listen to him later during his sojourns in Bombay. Every time I heard him, it was someting of a new experience to my sensibilities.

I was introduced to Annasaheb by the late lamented friend "Chiddu" (Chidanand Nagarkar) when the veteran chanced to pay an evening visit to his disciple's residence at Kanara House, at Mahim, in North Bombay. Chiddu and I were neighbours and most of my leisure hours were spent in his company. I had begun my free-lance writing on music for English newspapers in 1948 and one of my contributions related to the life and work of 'Chatur Pandit' Bhatkhandeji. Annasaheb seemed to have read that article and he smiled at me, in approbation, when I was being introduced to him by Chiddu.

About five years had to pass by before I had the second meeting with Annasaheb. He was again in Bombay during his Lucknow vacation and he had sent word

through Chiddu that he was anxious to see me. As it happened, I had started contributing to *The Times of India* from January 1954, and my first contribution to the prestigious daily was a five-part series of articles dealing with the past, present and future of Hindustani music. One of these articles dwelt on scholastic education in Hindustani music, with due reference to its merits and drawbacks. I had a feeling that Annasaheb's urgent invitation to me must have something to do with this article. My guess was correct.

Chiddu was with me during my visit to Annasaheb's Bombay residence at Raghavji Road at Cumballa Hill, in Central Bombay. Annasaheb himself opened the door of his spacious flat and literally gave me what may well be termed a dirty look, leave aside even a customary smile ! We were led to the drawing room. He didn't even ask us to take our seats. The next moment, as we voluntarily sat down on a sofa, I saw him fuming and quivering with rage. He went on shouting that his high hopes about me as a good writer on music were completely shattered after he saw my article in *The Times of India.* I think it was his uncontrollable habit to stutter, stammer and fumble while he spoke in high temper and show his deep sense of annoyance and resentment through his nervous movements and queer contortions. Chiddu, I distinctly remember, winked at me with a suppresssed smile, and signalling me to keep quiet till the veteran let off his steam.

In the course of his long verbal invective against me, Annasaheb challenged me to show whether some of his disciples who have made the grade as top concert performers were not products of scholastic education which, he thought, had come in for such "undeserved" criticism in my article. I made bold to seek his permission to speak on this point.

I discerned that his temper had already begun to cool down when he nodded his consent with a smile. All I told him, briefly but cautiously, was to request him to go through the article all over again. I pleaded with him that it was my modest attempt at a frank appraisal of the merits and drawbacks of mass education in music. He graciously agreed to my request, but said he would read it later.

I now mustered greater courage to ask him whether his top-notch disciples did not have the privilege of special coaching in the gurukula manner in addition to their scholastic training. He nodded "Yes" to my question with disarming candour. The next moment, the veteran rose from his seat and, holding me by the shoulders, said to me, in an apologetical tone, that he was rude to me and that I should not mind his intermperate conduct. He called for tea for all of us but kept muttering his regret till we took of him !

There were many meetings with Annasaheb in the years that followed. I hope I am wrong in my presumption that I discerned a frown and slightly disdainful manner in which he would return my customery 'namaste'. He would also give a smile which seemed more grudging than spontaneous. The conversation part at such meetings was simply formal and brief-in-the form of cryptic questions and answers.

With due regards to Annasaheb, I must also frankly recount few occasions

when I met him at concerts given by one or other of his top disciplies. In the interval, he would suddenly interject, in the presence of the audience, pointing out to me: "Mohan, isn't this artiste a product of scholastic education" ? The peels of laughter that emanated from the audience were heartily reciprocated by Annasaheb. I naturally felt discomfitted in such an avoidable situation.

Such experience showed that Annsaheb was, after all, like most other human beings, who would not be easily inclined to forget and forgive.

It is a supreme tragedy that Annasaheb is remembered more because of his involvement in the controversy resulting from AIR's audition policy in the early 'fitfites'. And it is pertinent to note that my meetings with him came in the wake of this controversy. It would as well be that these happenings must have naturally left him embittered, disillussioned and dispirited.

At this distance of time, it is easier and worthwhile, too, to find out whether Annasaheb was more sinned against than sinning. The truth must be found out and made known to the public at large, because it has served to eclipse, so awfully, the monumental work he has done in the field. And one feels sure that the promoters of the Acharya Ratanjankar Foundation will make this task as an integral part of their missionary work.

Mohan Nadkari

Mohan Nadkari
302, Kanchan Ban Dixit Road,
Vile Parle (E), Bombay 400 057.

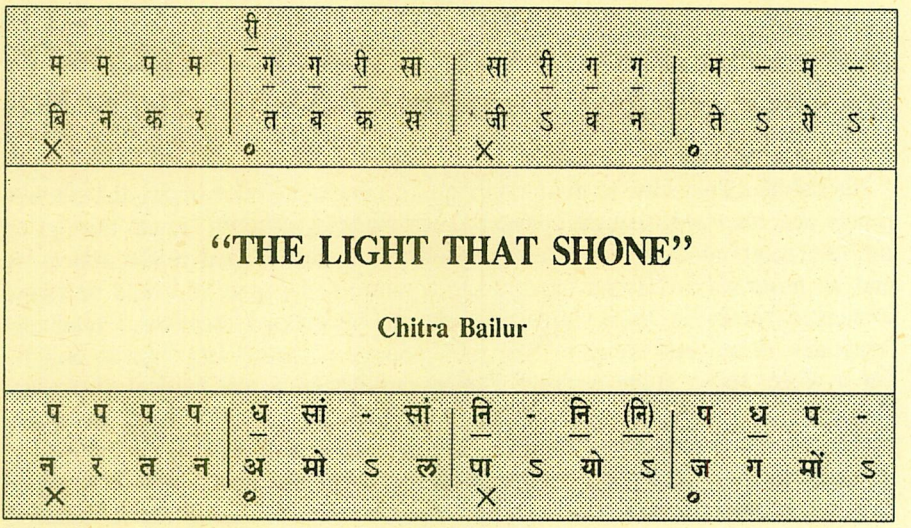

[*An ardent music lover who has been in association with Acharya Ratanjankar and his disciples for many years.*]

My husband was posted in Shimla at that time. It was late at night and the silvery ever meditating hills rose like a canopy over our cottage in the sleeping valley. On an impulse, my husband switched on our radio and... a super-sensitive, vibrant voice throbbed the silent night with music.... "Prof. Ratanjankar" whispered my husband and fell silent... The Heavenly Apsaras must have danced in sheer abandon, the Devas must have gulped down this musical nector — our earth must have trembled in sheer ecstacy!! The raga was 'Narayani' and he sang it for solid one hour and twenty minutes. It was just composed and sung on AIR for the first time from Lucknow Kendra. Who is Prof. Ratanjankar? I asked... "He is a shining luminary on the musical firmament" my husband replied. My entire being throbbed with the musical impact of this "Stupendous raga" and it pierced my very heart and has reposed there since then.

Since then I have often wondered whether this musical introduction 'मुलाकात' over the AIR from Lucknow in the year 1944 was a mere coincidence or an indication of the future shape of events to come. I feel convinced of the latter because Life is an 'Aaradhana' and events happen by the spiritual propelling force from above :

My husband's posting took us back to New Delhi and I was sucked into the mainstream of Art — music, drama and social service. I was appointed one of the honorary three-member prestigious panel of judges, to screen people in the Hindustani classical music on the All India Radio Delhi as well as other important committees. On account of these honorary responsibilities, my husband and I

started having the great pleasure as renowned artists came and stayed with us during their short musical assignments on New Delhi AIR or the Yearly All India Radio Sangeet Sammelans. Thus it was that Prof. S.N. Ratanjankar started gracing our home on the few occasions when his important musical assignments required his presence in Delhi.

His childlike simplicity, unassuming nature- camouflaging his towering and inherent genius and his warm thoughtfulness at once made us call him 'Anna' thus giving me one more brother. His habits were very simple, his food intake almost nil and he never threw 'Ustadi tantrums' and most of the time he would be found immersed totally in those fathomless depths of musical creations... Imminent musicians visited our home to have the pleasure of being with "Anna- Saheb" for a while, some sitting pensively, some carrying on a soft musical discussion, looking often towards "Anna Saheb" waiting with respect for him to say something. Our home reverberated with music, musical discussions "गूंज उठी संगीत लहरियाँ"

It used to seem to me right through our family's long association with 'Annasaheb' that he would walk leisurely through those endless avenues of Music, plucking with utmost care, only those unique blossoms of 'Swaraas' and tenderly stringing them into rare garlands of "Raagaas". Would thus present them on the shimmering platter of inherent bubbling creativity technical exuberance and immaculate presentation...

Then the great day arrived — on the afternoon of which "Annasaheb" was to be decorated with the prestigious 'Padma-Bhushan' award — the National recognition to be bestowed" by the then President of India in recognition of his vast musical contribution in the field of music. 'Annasaheb' had arrived a day or two earlier and was our honoured guest as usual. On that eventful day of his life, as he emerged from his bed room, ready to join us two, to leave for the Rashtrapati Bhavan, dressed in a Lucknow type long black "Sherwaani" with a matching black cap, Annasaheb exuded a strange royal dignity of immense grace and poise and his face seemed serenely calm. We two — my husband and I — on either side of our "Anna" felt a throb of pride and honour to have this unique opportunity of chaperoning such an intellectual and thus share in his glory.

Time passed and we shifted to Bombay... On the 14th February 1974 Pandit S.C.R. Bhat rang up to give me the saddest of tidings of our own Annasaheb's passing away' But leaving his 'Music' to light human hearts...

Chitra Bailur

●

Chitra Bailur
A.I. Deep Lakshmi, Prabha Devi, Sea Face,
Bombay 400 025.

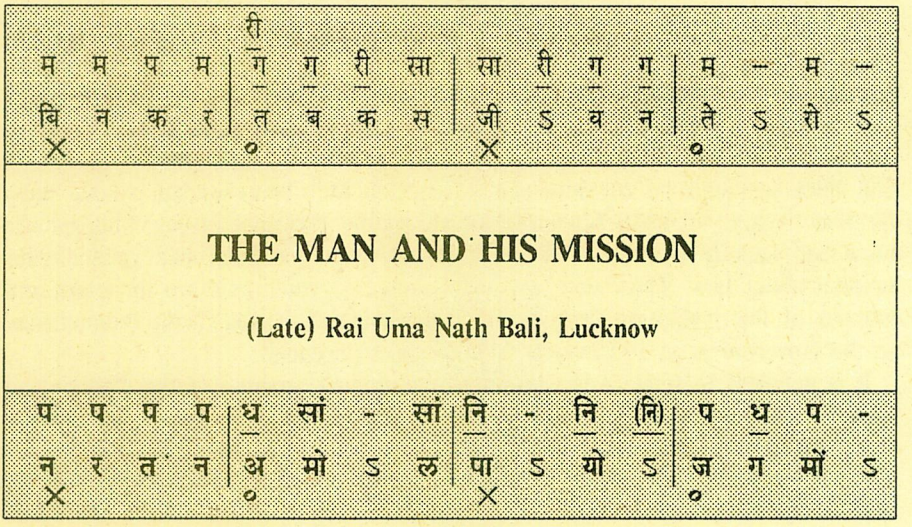

[Taluqdar of Dariyabad, can easily be considered a pioneer among those who have spread the culture of music in India. He was the prime mover in organising the two music conferences of Lucknow in 1924 and 1925 and was one of the founders of the Marris College and devoted all his life at much personal sacrifice to the progress of the college. Had developed close friendship with Pt. Bhatkhande and Pt. Ratanjankar.]

In the illustrious galaxy of academicians who have greatly influenced the study of classical Indian Music during the last three decades, Dr. Shrikrishna Narayan Ratanjankar figures amongst the foremost in the whole of the country. The Bhatkhande College of Hindustani Music, Lucknow, owes, to a very great extent, its present day name and fame to his steadfast association with it for thirty years, from the very birth to its subsequent bloom. It is an achievement well worth writing a few words about and I feel particularly happy and priviledged to do so.

I met Dr. Ratanjankar for the first time when he came to Lucknow in 1924 with the late Pt. V.N. Bhatkhande to participate in the All India Music Conference of which convention I was the Organizer and Hony. General Secretary, A diminutive young man, boyish and shy to a certain measure, he was then a student of B.A. in the university of Bombay. I met him again the following year on a similar ocasion and in this very city. Though apparently he possessed none of those requirements by which personality is now-a-days so often defined, I was highly impressed by his performances both on and off the stage. At my instance, Shri Bhatkhandeji agreed to spare him to join the newly founded Marris College of

Hindustani Music, at Lucknow in 1926 as an Assistant Music teacher. Subsequent years have amply proved that this appointment was positively the best in the interests of the newly founded institution, though at that moment I came in for a good deal of criticism by some of my close friends and enthusiasts, who were doubtful about the wisdom of my choice. To many of them, his appointment had been actuated by my love and respect to Shri Bhatkhandeji, whose pupil he was. Again, in 1928 his appointment as the Principal of the College was none too happily acclaimed by some though many of them had revised their opinion about him. Thus were we both teamed together to share the cares and worries of this institution from the very beginning till it was finally handed over to the Government in 1955 owing to financial stringencies.

It is needless to relate or review here the gradual progress of the College and its subsequent blossoming forth into a premier institution of its kind in the country under his able guidance. Its reputation had been firmly established by 1936 mainly through the selfless dedication and indefatigable zeal of Shri Ratanjankar, whose capabilities as an outstanding teacher elicited very high praise from the late Ustad Faiyas Khan Publicly - After the demise of Shri. Bhatkhandeji in 1936, I established Bhatkhande University of Hindustani Music in 1939 mainly to organise Music examinations and also for Post-Graduate teaching. The Marris College became its constituent College, but it could not last long as the College had to be separated from Bhatkhande University now known as Bhatkhande Sangit Vidyapeeth as desired by Government. Shri Ratanjankar was naturally appointed Chief Director of all its branches of teaching, Vocal, Instrumental and Dance. After independence Marris College was rechristened after the name of Bhatkhandeji and is now called Bhatkhande Sangit Vidyalaya. Even after my handing over the college to the Government he continued as the Principal of the college and Chief Director of Bhatkhande Sangit Vidyapith till his appointment as Vice-Chancellor of the music University at Khairagarh, M.P., in 1957.

A study of classical Indian Music involves a strictly disciplined studentship and, after a preliminary acquaintance with the fundamentals, it has to be learnt the hard way through the medium of ear, with both the teacher and the taught in close harmony. Shri. Ratanjankar was fortunate to have been a student of it in its renascent days and his pupilship of Shri Bhatkhandeji and the great Ustad Faiyaz Khan, two of the most renowed celebrities of the day, had deeply impressed him. Quite naturally he, too, has, in his turn, stamped his numerous students with his own inimitable genius. Today his pupils and students are widely scattered all over Northern India and some of the more distinguished ones have gained recognition in other parts of the country as well. His departure from this place has been a sad blow to the cause of music in the State and an irreparable loss to the Bhatkhande College and Vidyapith.

It is not for me to acclaim or eulogise his accomplishments in the sphere of classical music; I would rather leave it to competent critics and connoisseurs of this finest of fine arts. One noticeable feature has, however, greatly impressed many of us and I think it is worth mentioning here. While most musicians of

note and repute have one or the other Raga as their favourite or speciality Shri Ratanjankar is enchantingly flawless in his rendering of any one of them with equal grace and ease. Herein he is unique and peerless. Possibly this accounts for his having proved a great success as a teacher. When a proper evaluation of permanent contributions to popularise classical music in India is made, I belive he would readily be placed in the front rank. The highest testimony of it is that the National Government has recognised his services and knowledge of music by awarding him in 1957 the title of Padma Bhushan.

While reminsiscing about our long and cordial associations, I cannot refrain from mentioning a memorable event in my life. Once he paid a visit to my place at Daryabad on the festive occasion of Holi. There, to the surprise of all of us, he composed and sang a Holi song, wittingly containing the names of almost all of my children. This Holi song subsequently became so popular that he was requested to render it on numerous occasion by clamouring audiences. I had it duly recorded and it forms one of my most prized possessions to-day.

I fully associated myself in wishing him a very very long lease of life, from the beginning of which he has taken upon himself the sacred mission of living and striving for the restoration of classical music to its proper place in society.

Rai Uma Nath Bali

.....

Rai Uma Nath Bali
(Reproduced from Commemoration Volume in honour of Dr. S.N. Ratanjankar, 1961).

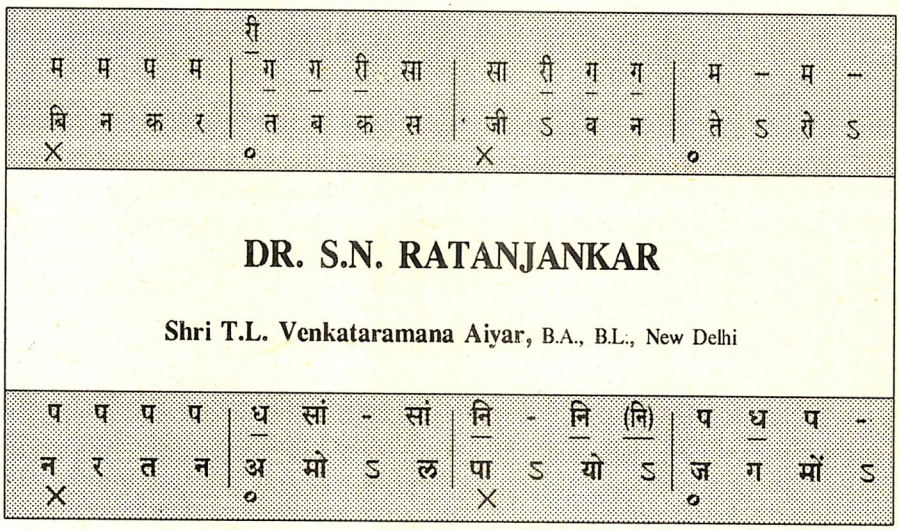

[A great scholar of Sanskrit, Telugu and Tamil literature, ancient and modern, on India Music, retired judge, Supreme Court, India. . He has made a special study of the musical compositions of Shri Muthuswami Dikshitar, one of the Musical Trinity of South India. A prominent and influential member of the Madras Music Academy and has at several occasions presided at the Experts' meetings held during the Music conferences of the said Academy and symposiums of the All India Radio on Music. Equally intersted in Hindustani Music and is one of the votaries of an exchange of ideas and usages in practice between Hindustani and Carnatic Music and looks forward to see a happy fusion of the two systems.]

Among the notable personalities in the world of Indian music at the present day Dr. S.N. Ratanjankar is one of the most distinguished. Lovers of Hindustani music appreciate the rich and flawless recitals of ragalap which he gives in truly classical style. Musicologists praise him for his profound scholarship in the science of music. And students of music honour him as a distinguished disciple of Prof. Bhatkhande and as a guru who has trained several; musicians of ability and repute. These are achievements which are in themselves sufficient to give Dr. Ratanjankar an honoured place among the musicians. But he has something more and it is this that gives him a unique place among them. He is the symbol of the unity of Indian music, Hindustani and Carnatic.

India, that is Bharat, is not a mere political union. It is welded together by a culture which among all its diversities has a unity which marks it off from the rest of the work. Music is one of the subjects in which this is strikingly exemplified. The distinctive feature of Indian music are its raga and tala systems and it is on this foundation that both the Hindustani and Carnatic system of music are built. They are both of them born of the same parentage and are governed by the same shastra as regards swaras, sruties, ragas and talas. It is true that there are differences between them and they are on the surface. But one has to dive deep before he discovers that these differences are more dialectal in character and that in spite of them they are essentially the same. This is a fact which unfortunately is not adequately realised not merely by laymen but also by musicians. The greatest need in the world of music at the present day is to educate the musicians and lovers of music in the concept of the unity of Indian music. Dr. Ratanjankar is one of the small but growing band of scholars who have been doing this with conspicuous success.

I had occasion to know Dr. Ratanjankar as I remember of the Expert Committee of the Music Academy. Madras, He took a prominent part in the deliberations of that learned body and took considerable pains to make but that both Hindustani and Carnatic music were, in their essentials, the same. He was able to appreciate the peculiar features of Carnatic music, and at the same time he brought home to the listeners of Carnatic music the beauty of the classical Hindustanii music. He gave several discourses on the types of compositions current in Hindustani music, and illustrated his discourses by referring to the corresponding types in Carnatic music. He had such a keen eye for the beauties of Carnatic music that he freeely adopted both the types of compositions current in Carnatic music and the ragas in vogue therein in Hindustani music. Thus varna is a type of composition peculiar to South Indian music, and Hamsadhwani is a raga of South India, which Prof. Bhatkhande has naturalised in Hindustani music. Dr. Ratanjankar has composed a varna in raga Hamsadhwani. This is only one illustration.

On an occasion like this it is but fitting that all lovers of Indian music, both Hindustani and Carnatic,should pay their tribute to the valuable services of Dr. Ratanjankar to the cause of Indian music and wish him a long and healthy life.

Shri. T.L. Venkataramana Aiyar

•

.....

Shri T.L. Venkararamana Aiyar
(Reproduced from Commemoration Volume in honour of Dr. S.N. Ratanjankar, 1961).

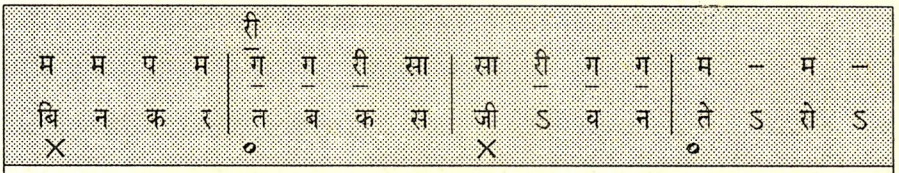

A GREAT TEACHER AND A REFORMER

(Late) Shri Birendra Kishore Roy-Choudhury, Calcutta.

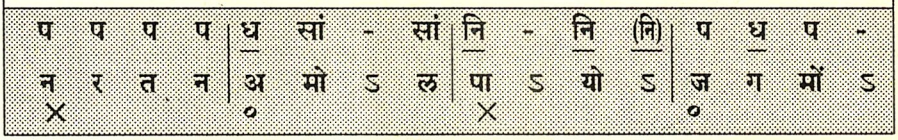

[Eminent Surbahar player. His teachers were - Ustad Amirkhan (Sarod), Inayatkhan (sitar) and again for sarod - Hafiz Ali Khan, Allauddin Khan and Karamatulla Khan and some other 'gurus' also. Closely connected with Dr. S.N. Ratanjankar in the sphere of musical culture and the A.I.R.].

I was fortunate enough not only to have acquaintance but also to have intimate personal relationship with Dr. S.N. Ratanjankar, Padmabhushan, at the beginning of my musical career. I was introduced to this musical Savant by the late Pramada Devi Choudhorani, the Secretary of The "Sangeet Sammilanee", Calcutta. The occasion was the first "Geetasree" title Examination of the Sammilanee. Kavi Guru Rabindra Nath coined the word "Geetasree" as the title for the diploma examination of which he was a patron. Pandit Ratanjankarji, Dr. Gopeswar Banerjee, Deshikottam and myself were selected as the judges for this title examination. The syllabus of the Sammilanee was modelled after that of the "Sangeet Visharad" courses of the Bhatkhande College of Music, Lucknow. On behalf of the Sammilanee, we always used to receive valuable advice and suggestions from Shri Ratanjankarji, who was principal of the Bhatkhande College, Lucknow, although we knew each other by letters. The examination hall of the Sangeet Sammilanee was the venue of our first meeting. But that time Ratanjankarji had already reached a grat height of prominence in the musical world on account of his vast knowledge of classical music, ability as a teacher of the highest class and also as a master artist of music. In the course of his conversation with us his wonderful personality was vivid to us as he never made any show of his monumental erudition and politeness and humility were personified. Later on I took the chance of inviting him to

our house, when my late revered father Brojendra Kishore Roy Choudhury of Gouripur gave him a cordial reception as the greatest disciple of Pandit Bhatkhandeji, with whom my father had correspondence regarding classical music. My father told Ratanjankarji that he was translating into Bengali "The Hindustani Sangeet Paddhati" written by Bhatkhandeji. The Sangeet Sammilanee of Calcutta, of which the musical artiste and teacher, the late Girija Shankar Chakravarty, was not only the Principal, but also the main guide and inspirer was in those days the only representative musical institution in Calcutta. Girija Shankar was an intimate friend of Ratanjankarji and was always eager to be guided by the instruction of Shri. Ratanjankarji regarding the training up of young girls and boys on the lines was a foremost exponent of musical education in India. The truth of this opinion easily be ascertained when we look into history of the Bhatkhande musical institution. The late great Pandit Bhatkhande laid foundation of a high class representative institution of music, when he started the College of Music at Lucknow under the patronage of Sir William Marris, the then Governor of U.P., as well as the ruling princes Rampur, and other States. But it was due the untiring zeal, perseverance and the high standard of teaching of Ratanjankarji that the College of Music became transformed into the Great Bhatkhande College of Music, the Centre of the Bhatkhande Musical University with its innumerable branches throughout upper India.

The all India structure of the Bhatkhande university clearly shows his great capacity of ideal teacher. Many people argue in consideration of the number of student, who pass the Bhatkhande University examinations I obtained the title of "Sangeet Visharad", and that among them there have grown in the sphere of music only a limited number of high musicians. These critics misunderstand purpose of the musical schools and colleges. students who undergo studies in the Bachelor of Arts examination have to study work of great poets and writers. But everyone of them is not expected to be a great poet or a great writer.

Pandit Bhatkhandeji wanted to bring the Hindustani classical music in the line of the academic studies for the benefit of the educated society. Shri Ratanjankarji also followed the principles of his great master and has done a great deal in popularising the classical music among the pupils of modern culture, who can now appreciate the artistic valuesof this music. The various school and college teachers who have at least obtained the general knowledge of classical music, and its notation can demonstrate music of average merit. The value of this propagation of musical culture throughout the country cannot be over estimated.

We have now at least thousands of listeners of classical music who have got some ideas of the Ragas, Swaras and Talas.

Shri Ratanjankarji, after the independence of India, became the main leader ofa thorough reformation of the Hindustani classical music. After attaining the height of reputation of the most efficient teacher of music in India as the Principal of thee Bhatkhande College of Music, he was entrusted by the Govt. of India to lead the panel of judges for proper evaluation of the present day classical music (Northern system) and gradation of the musicians- within the range of

the All India Radio, under the Ministry of Information and Broadcasting. Dr. B.V. Keskar, the Minister-in-charge of this department, had complete confidence in Shri Ratanjankarji in this matter and as an old associate of him, I can boldly assert that Shri Ratanjankarji rose to the occasion and did his very best to uplift the standard of the Radio Music, in spite of misunderstanding from various quarters and innumerable obtacles. His task was not only to ascertain the real merits of the musicians, but also to arrange for the catering of classical music for the masses. The Radio Broadcasts are meant for education as well as entertainment. As such the high graded artists should not only have the depth of musical knowledge but to have also the technique and capacities of the presentation of music to please the listeners. Ratanjankarji had to face many critics in the course of his duties as the Vice-Chairman of the panel of judges but his conscience was clear and we were highly benefited in the course of our associations with him to have his valuable opinions regarding the standards of classical music.

Now, on his sixty-first birthday, we the music lovers of India pray to the Almighty for his prolonged life and a sound health, so that the Indian classical music may make further remarkable progress under his leadership in some new and greater venue of the National Classical music.

Birendra Kishore Roy-Choudhury

.....

Birendra Kishore Roy-Choudhury
(Reproduced from Commemoration Volume in honour of Dr. S.N. Ratanjankar, 1961).

MEMOIRS

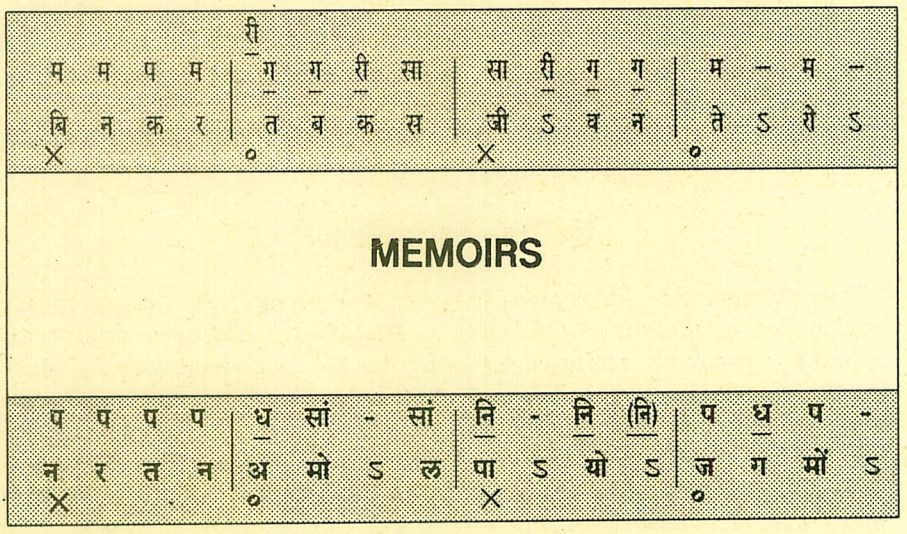

Awesome Guru

From my childhood I had heard of Pt. S.N. Ratanjankar especially from my music master — Shri. Sitaram Wahare. When I went to Lucknow to appear for the Sangit Visharad examination as a private candidate, he was pointed out to me by Lakhnavi students. A short slight man, but to us he appeared awesome. Imagine my trepidation when I found him standing over me as I was busy answering my theory paper. I looked up and was relieved to see the twinkle in his eye.

Years later, when I started learning music from Ustad Bashir Khan of the Agra gharana, I came into closer contact with Ratanjankarji. Many a time did I meet him at our house in Calcutta where he was kind enough to visit us chiefly on account of Bashir Khansaheb who was his gurubhai, at Shri. Nanigopal Banerji's house, at private gatherings where he sang, in Bombay at Ratanjankarji's house, in Lucknow where I went to sing for the U.P. Govt. festival. Always I was struck by his affability, (he never forgot to enquire about old friends, such as Hiru Ganguli) and by his profound knowledge.

He used to ask me to sing whenever he came to our house. On two occasions, of his own will, he taught me a few 'chizas' (compositions). I remember one which is great favourite of mine, "Gund lavo malaniya" in Raga Shahana, 'Papi dadarra bolai' (Gaudmalhar) which he had recorded for HMV. When he heard I was learning dhrupad-dhamar, he gave me a dhamar in Kukubh Bilawal 'Udho yeh do bol'.

An effort by his admirers and disciples, especially Shri. K.G. Ginde his devoted shishya, to preserve his many compositions and other writings, deserves all praise. My good wishes are with this laudable and useful project.

***Aparna Chakravarti**

He Was An Institution

Truly Acharya S.N. Ratanjankar has been a Towering personality in his life time as one of the greatest Musicians & Musicologists. His noble contribution to Music is pioneering and unparalelled. He has laid sound foundation for Music for the Generation to come. To commemorate his achievements and to give due credit to this 'GREAT SOUL' is in itself a 'HERCULIAN TASK'. Because Acharyaji Ratanjankar was not just an individual Musician or Musicologist. He was and he is still even after his demise an "Institution giving 'Beacon light', to all those who aspire to become Musicians. I really fail to understand, if Acharyaji had not laid such a sound foundation for Indian Classical Music, where the present and future generation of musicians would have gone to achieve their fame and fortune, which they enjoy today and which they will enjoy for generations to come.

I was, no doubt, most fortunate that for a very short period I was a disciple of Acharyaji and little stint had given me the courage of conviction to lay a sound Foundation for myself thereafter. Although I received actual and more strenuous training from other Gurus, Acharya Ratanjankar has left an indelible impression on me, and I always Salute him as my First and Great Guru'. I take immense pride in associating my name with Acharyaji as his disciple and I will continue to take pride in the same.

I cannot forget his contribution to All India Radio as the PRESIDENT and the CHAIRMAN of the CENTRAL MUSIC AUDITION BOARD, NEW DELHI for a long period during the tenure of late Dr. B.V. Keskar, as the then, the Hon'ble Minister in Charge of Information & Broadcasting. Dr. Keskar himself a great learned Scholar with many facets, could appreciate and will utilise the services of Acharya Ratanjankar and today looking back, I can very proudly say that ALL INDIA RADIO had its best span of life during the period Acharyaji and Dr. Keskarji worked hand in hand for the uplift and betterment of ALL INDIA RADIO, in all respect which later on earned for ACHARYA RATANJANRJI "PADMA BHUSHAN" DESERVING HONOUR, from the GOVERNMENT OF INDIA.

Once I shifted for serious studies under other Gurus, I lost contact with this great soul and I was brought up in totally different atmosphere where I had only one task to perfect my art and become a Maestro in my own right and

*Aparna Chakravarti
65/1 Diamond Harbour Road, Calcutta 7090 023.
(Disciple of Ustad Bashirkhan of Agra Gharana. Music critic in 'statesman' Calcutta).

I totally concentrated on this ambition which ultimately I achieved, as you are well aware of.

I shall ever feel proud that I have been one of the pupils of this 'Great Guru' and in my present performance and as an eminent Musician, Acharya Ratanjankar has a share and I take pride in mentioning myself as a **"CHIP of the old BLOCK".**

***Zarin Sharma**

Two Occasions

The occasions on which I could come anywhere near Anna Sahib were only two.

The first time, neither of us could see the other as I sat in the AIR studios for a "re-audition" and he was in some distant room heading the panel of judges. With a thumping heart, I executed a short recital of Bhimpalasi and he immediately said (through the sound system — of course) "Des ki Drut Gat Bajaiye" and later on a sharp and curt thank you".

The second and last time, I was playing in a monthly sitting of JHANKAR Music Circle and he was unobtrusively sitting in a corner, wearing a coat and trousers and not his normal performance attire. I never knew he was there till, at the end of my recital, he got up and motioned me to come to him. Recognising him, I went up and offered my Pranam with due reverence. I had played the raga "Chhaya" and he caught me rather unprepared with the inevitable question — "Chhaya aur chhayanat ke bich may Aap keya prabhed — maantey haon ?".

Gathering together my wits as far as practicable, I told him the points of difference which I had learnt from my Guruji (Radhika Mohan Maitra). Anna Sahib kept listening to me with a grave countenance and when I had finished, he said, this time in English, "Yes, that is how Radhikaji plays it and how his Guru Amir Khan played it'. I am pleased to find that you follow your Guru's talim consistently".

I treasure this as one of the greatest compliments I have received in my humble musical career.

***Buddhdev Das Gupta**

*Buddhdev Das Gupta
Calcutta.
[Famous Sarod maestro Associated with S.R.A. Calcutta, disciple of Radhika Mohan Moitra.]

*Zarin Sharma
Bandra, Bombay 400 050.
[World famous Sarod player. Learnt music under Pt. S.C.R. Bhat and (indirectly of Pt. Ratanjankar) and many Gurus.]

Acharya S.N. Ratanjankar
An Ideal Missionery

I hail from a family, where music was nurtured in its devotional fervour. My father, Dr. G.R. Ginde, though a General Medical Practitioner by Profession, had a taste for music from his earlier days, as a result, he used to sing 'Bhajans' every Thursday evening before the little house-shrine, generally alone and many a time with his sons, whenever, they happened to be there on vacation. Thus, I was very much exposed to music, based on classical form mainly. In the family, besides my two elder brothers, my youngest brother — K.G. Ginde had an instinct and in-born talent for music right from his age of three/four and as such, my father encouraged him to imbibe this art form. Our eldest brother — Dr. Ram Ginde, was himself very much interested in music and he took keen interest in Krishna Ginde's musical career. It was but natural that we brothers got more and more interested in classical music with the gradual progress of Krishna Ginde in his musical persuit. In due course, with my eldest brother's efforts, Krishna Ginde was finally put under the tutelage of Acharya Ratanjankarji in 1936.

After my education, I joined the P & T Dept. in 1942 as a Telegraphist in C.T.O. Bombay. It was then I happened to get myself introduced to the Ratanjankar Family through my father. Very soon, I got myself closely acquainted with all their family members and used to visit them whenever possible. Since then, the Acharya was just Annasaheb to me till his last.

Annasaheb used to spend his summer vacation at Bombay with his family. During this period of nearly two and half months, Annasaheb used to sit for his practice every evening on week days and in the morning on Sundays with his few pupils for about two hours, with a regular Tabla player in attendance. This practice session was so well known that many of Annasaheb's admirers and music lovers used to attend these sessions without fail. Many a time well known musiciamns such as Ustad Vilayat Hussain Khan, Prof. B.R. Deodhar, Shri Wamanrao Deshpande, Rajarambuwa Paradkar, Panshikarbuwa, Ustad Majid Khan Sarangia (who very often came with his Sarangi to acccompany Annasaheb during his practice on Sunday mornings) and many others used to be regular in attending these sessions. Very often, Kumar Gandharva used to be present to acquire some indirect training from Annasaheb during these practice sessions I used to attend these sessions without fail and never missed even a single session in spite of my official duties, which I got myself adjusted. Although I had very little monthly income those days, I used to forgo my overtime duties for the sake of these precious musical sessions. It was because of these sessions that I got more and more involved in understanding good classical music.

Some Music Circles in those days, used to arrange programmes of Annasaheb and I had the benefit of attending almost all of them. I had noticed that nearly 75—80% of the audience comprised of a gathering of musicians themselves to hear Annasaheb, who used to sing many unknown or rare Ragas, sometimes self-composed, during his recitals for the benefit of such listeners. I have also

observed that his recitals were a treat to such musicians.

As a person, Annasaheb was a thorough gentleman, possessing a very kind hearted, affectionate and loving nature. He always addressed his juniors, even his disciples, with respect he was always ready and keen in imparting knowledge and training to his pupils thus encouraging them to blossom forth themselves as good performers, teachers and academicians as per the calibre of each of them. Annasaheb was always accessible to all such musicians and music students who aspired to acquire knowledge in music. He was totally free from any sort of politics in Music. All his life, he was a true missionery following the path and footsteps of his Mentor — Pandit V.N. Bhatkhande. I can even state from my personal experience and knowledge that he never accepted a single pie in return of any service rendered either to his pupils or any one else. Even the money in the form of remuneration that he used to receive from his music concerts was promptly donated by him to the Marris College Fund to meet its financial needs.

I have yet to come across any musician, who possessed such a vast and rich reportoire of Ragas and mastery over them. He could render any Raga, howsoever complicated it may be, with the same ease and command. As such, he was respected by one and all among the musicians of his time. I have seen Ustad Mushtaq Hussain Khan of Rampur, Thakur Jaideva Singh, Prof. B.R. Deodhar, Shri. Wamanrao Deshpande Pandit Jagannathbuwa Purohit and many others coming to him and discussing various aspects of music and getting solved many of their doubts.

As a Composer, I place him very high in my humble esteem. Many of his compositions and self-composed Ragas have been popularised by established musicians. He had composed many compositions instantly in my presence while teaching his students during these practice sessions. He had absolute command over the Ragas and possessed good knowledge of the literature in many languages and as such the suitable literacy vocabulary was at his finger tips. Music and words simply emerged hand in hand and the desired composition would take shape within no time.

All that I can say in a nutshell is that Annasaheb Ratanjankar was a true missionery totally devoted to the propagation of music in the true traditional form. He always extended his helping hand to all such aspirants, who sincerely desired to seek knowledge and material in music without any motive otherwise.

To such a great and noble personality, our Annasaheb, I offer my respectful Pranaams.

***Ganpati G. Ginde**

*Ganpati G. Ginde
Goregaon, Bombay 400 063.
[Lover of Indian classical music and closely associated with Pt. Ratanjankar]

Anna Sahib : 'Daiya Kahan Gailo...'?

It is not often that you run into a multi-faceted personality by accident, as it were, who appears to share quite a big chunk of your life and the values you cherish. I had such an experience and I was none the worse for it. Pandit Krishna Narayan Ratanjankar was one such — Musician, Scholar, Administrator and Teacher all rolled in one. Panditji or Principal Sahib to the outside world but Anna Sahib to me and hundreds of his students and admirers was the most unforgettable character I ever met. I cannot claim to be his student in the conventional sense. I joined the Sitar class of Bhatkhande College of Music for a short time but left the college when I was offered an assignment for teaching Psychology at a local college. Anna Sahib, however, wanted me to make music my first love and sent me to the Prince's College in M.P. as a Senior Teacher of Music. But I had to leave soon due to serious differences with the Principal, an Englishman who was not particularly fond of Hindustani Music. I then thought of starting a Coaching Class with some friends, mostly graduates of the College. Anna Sahib seemed to like the idea and blessed our new venture. On my part, I was not unhappy either for I thought that I had perhaps come to the end of my tether. But my happiness was short lived. I soon received a letter from the U.G.C. asking me to visit some European Universities for illustrated talks on contemporary music. And that was end of my Coaching Class.

While in London, I was invited to give a series of illustrated talks at Balliol College, Oxford on Indo- European Music. My knowledge of Western Music being elementary, I wrote to Anna Sahib if he could wriggle me out of this impasse and then conveniently forgot about it. I thought that writing a dissertation on Western Music covering all my points was too much to expect from a busy man. But when I did receive a postal cover from him barely a fortnight after I had mailed my letter, I had no words to thank him. The letter had all that I wanted.

At Pandit Bhatkhande's behest Anna Sahib took charge of the Lucknow Music College at a very early age and built it up almost from scrap. With few students and even fewer members of staff, he found it difficult to run the college smoothly in the midst of acute financial stress. He lived in a small room behind his office and sang only when senior students came for his guidance. Very few people seemed to have heard him in a concert. The rumour soon went round that Principal Sahib was a good teacher and theoretician but not much of a performer. It is tragic that years after his demise there are people who are not prepared to accept him as a practical musician. If my memory serves me right, Anna Sahib was invited to sing at a Music Conference in Delhi sometime in early thirties. The Indian States were represented by their Darbar Musicians — all heavy weights and Anna Sahib must have been feeling pretty nervous when he spotted one eminent singer whom he held in high esteem. I was not present but I read the review next morning. Anna Sahib got a good Press. A le ding Newspaper of Delhi giving a comparative analysis of the renderings of Anna Sahib and other

stalwarts including the one for whom he had great regard wrote something on the following lines :

"The youthful Ratanjankar gave a delectable performance. What we found in him, we missed in many veterans".

This passage did the trick and Anna Sahib regained most of the lost ground. True, with ever mounting administrative pressure, he had little time for practice but in his own circle, he was the master of ceremonies. Rare and difficult Ragas which even veterans would touch with a pair of tongs, our Master sang with ease and confidence.

Having been close to him during the formative years of my life, I have had many occasions of hearing him. The way he handled rare Ragas, the manner in which the application of the same Swara in different Ragas and his own method of explaining the delicate subtleties of different Gayakis was a feat worthy of emulation by the younger generation. When he was the Chairman of A.I.R.'s Audition Board, I was its Deputy Chief Producer based in Delhi and when he was the Vice-Chancellor of Indira Music University, Khairagarh, I was the Dean of the Faculty of Music & Fine Arts. So both in and outside Lucknow, I continued to see a lot of him and had the privilege of his guidance and advice. I lost contact with him only when I joined Visva Bharati as Professor & Head of the Department of Music.

In Marathi Anna means 'elder brother' and in its wider connotation, an elder brother he was to most of us. A man of many moods, now gay, now serious, he was a veritable institution and music was just an extension of his personality. He was dwarfish and appeared to be too small to contain his scholarship and knowledgeability within his frame. One who had inherited Pandit Bhatkhande's fund of scholarship and Ustad Faiyaz Khan's profound musicianship, Anna Sahib was much too great to be gauged by puny people like us. He was not our musician but a musician's musician.

I was in Calcutta when I read the news in the papers that it was all over and Anna Sahib had left us. The news was too terrible to be true. I felt as though I had lost a part of my being. Suddenly, my thoughts turned to his students — Bhatta, Ginde, Nagarkar and a host of others who must be feeling literally orphaned. It was too late even for a formality but I sent a routine telegram. But would that assuage his heart-broken students and family members ? I have still my doubts.

Anna Sahib's demise created a void in India's inviolate classical music. He came and went away — "when comes such another"?

***D.T. Joshi**

*D.T. Joshi
Burdwan 713 101. (W.B.)
[Disciple of U. Inayat Khan (sitar) and Faiyyaz Khan. Dean of faculty of Music at Khairagadh University].

Such Was My Guru

It was 1936. A music conference was held at Lucknow by Marris Music College. Introduced to me by late Mirashibua of Gwalior Gharana, Shri. Kumar Gandharva, who became a very close friend afterwards, was invited to this conference and I was to accompany him on violin. Unfortunately he could not make it due to ill health and ultimately I was left alone to give a solo performance. I knew only two ragas that time — Bhairav & Yaman. I was very scared. I do not know how I played, but when I ended my performance, the first person to congratulate me was late Dr. S.N. Ratanjankar alias 'Anna Sahib'. We used to call him by that name. I was very much overwhelmed when I came to know that the person who had appreciated me, the then short built personality was none but Vice — President of Marris Music College. Unaware of what was to be served in coming future, with sweet memories of Lucknow I returned to Bombay.

I was surprised one fine morning to see Anna Sahib at my elder cousin brother late Shri. Athwale's residence. He had brought a proposal for me as teacher of violin in Marris Music College at Lucknow. My brother knew how much knowledge I had and he argued with Anna Saheb about it. But Anna Saheb was very confident and firm on his decision and finally I was to go to Lucknow. Thus a very important period of my life started. This phase has helped me a lot to develop my music and come up in the career. Anna Saheb not only became my Guru but also guardian also. He was simple, disciplined and a man of big heart. Educating common man — Indian classical music — was his mission and this missionery work he carried out through out his life.

He was so learned that he knew all the ragas with all the compositions by heart. Moreover he was a composer of his own I learnt more than 50 to 60 ragas from him. He taught me very generously. It was very interesting to know that my tuition, so to say, used to start at 10 p.m. in night till early morning. After the violin classes I used to go to his room and then he used to sing and I used to accompany him. This continued till I left Marris Music College for a job at Lucknow Radio Station in 1952.

I did not had any degree, because of his efforts, honorary degree of Vadya Nipun was conferred on me in 1944. Because ofhis advice, I was influenced to write a book on violin "Bela Shikshak". Because of his valuable advice, I started on concentrating to be a soloist of violin rather only a accompanist.

Such was my Guru, who always thought of his student, his progress, his good. I owe him so much that writing pages and pages about him is not enough. Words fell short in expressing gratitude.

***V.G. Jog**

*V.G. Jog
S.R.A. Calcutta- 700 040.
[World renowned violinist. Teacher at inarris college from 1938 onwards. Member of expert committee S.R.A. Calcutta.]

The Greatest Composer

I did not have the good fortune of listening to Pandit S.N. Ratanjankar on more than three or four occasions. First time I heard him was at the Theosophical Society, Varanasi. I was stunned by the academic excellence of his rendering and his control over the Strutis. His sense of ragdari was unparallel and flawless. What he certainly lacked was an impressive personality and an imposing voice. Perhaps these were the factors which failed to move his ordinary listeners. But all those who were in close contact with him and possessed a deeper understanding of the art, including all his numerous disciples, rightly regarded him as one of the greatest performing musicians of his times.

The music world generally acknowledged him as a great musicologist and a composer. In my opinion, he was undoubtedly the greatest composer of his period, having composed at least one thousand Bandishes filled with aesthetic and academic excellence. He was the most learned musician- musicologist of the tweniteth century besides Pandit V.N. Bhatkhande.

Ratanjankarji's honesty and integrity were his strongest characteristics, and, as such, he was somewhat a misfit in the times he lived, unable to turn the opportunities he got in life into his gain and advantage. Nevertheless he was proud of his honesty and won the love and respect of all those who came in close contact with him and who remember him even today, eighteen years after his death. With utmost reverence and affection.

***V.K. Kichlu**

Annasaheb : A Great Humanitarian & Composer

As a teen-age boy I used to go to Dr. Ratanjankar's house at Gowalia Tank Bombay along with Pt. K.G. Ginde. This was much before I started learning Sitar. Even then Dr. Ratanjankar, Annasaheb as his near and dear ones called him, gave all the love and affection to me and treated me with dignity. Similar was the treatment given by him to all those who came in contact with him, irrespective of the fact whether they were from the field of music or not.

When I started learning Sitar at Shreevallabh Sangeetalaya, Sion, Bombay under the guidance of late Shri Trimbak Jadhav, Annasaheb had taken up Directorship of this Sangeetalaya. Upon the request of Shri. Trimbak Jadhav, he composed about 75 numbers of Sitar gats and directed us as to how to play them. This set of gats is a treasure in itself. These gats use old traditional bols of mizraf like — Dir Dir Dir Dir, Dra- Ra Da and Da- RDa, which are rarely heard now-a-days.

*V.K. Kichlu
Executive Director, Sangit Research Academy, Calcutta 700 040.
[Had training under Latafat Hussain Khan and also under Aminuddin Dagar].

These compositions are complete with Sthayi, Manja and Antara. Use of meend, kan, ghasit, murki etc., are so appropriate that if a student just masters these gats he need not learn elaborate alaps. He will instantly get all the intricasies of that particular raga and will know how to differentiate it from a similar raga.

These gats are also excellent from rhythmic point of view. The action of reaching 'Sam' is wonderful in almost all gats. The compositions are in various talas like 'Trital' 'Ektal' 'Teevra' and 'Ada-choutal' etc. Both melody and rhythmwise these gats are of highest traditional type, excellent and different from present day one-line monotonous gats.

It will be surprising to know that he composed most of these gats while travelling from Gowalia Tank to Sion in BEST Bus. The heavy rush, the noisy streets and uncomofortable journey did not deter his concentration and dedication.

I was unfortunate not to be present for his funeral, as he died only three weeks after I was transferred by my Employer to Raipur.

***C.L. Koppikar**

Jewel Of Men

My latest and last meeting was at Ratanjankarji's home in Bombay. The occasion was one of the meetings of the Editorial Board of the Music Encyclopaedia Project of Sangeet Mahabharati. The Project had begun in right earnest and proformas were being devised, so as to attract relevant information on every aspect of music, He was in the chair and permitted discussion on every small detail. It revealed his respct and consideration for others on the Board. The sessions were long but even at his advanced age did not show any weariness or 'Casualness'.

The Indira Kala Sangeet Vishwavidyalaya of Khairaagarh (M.P.) was indeed fortunate in having Ratanjankarji as its first Vice-Chanceler. Instituting a University for Music and Fine Arts was decided by the M.P. Govt. in rather a casual manner and Ratanjankarji had to work within a framework, with small grants absolutely insufficient for instituting departments and for development. Under this trying circumstances, Ratanjankarji tried his best to give a good start.

My earliest memory (1944—45) of Ratanjankarji goes to my listening to his private concert at someone's place at Kanpur. Perhaps it was arranged through the good offices of Thakur Jaidev Singh, who was staying at Kanpur at the time. I always looked to him for some less-known raga or a raga-variety and to the rendering of a composition. And listening to him was highly rewarding.

If I try to consolidate my memories of this Jewel of Men — of small frame, upright back, peeping intelligent eyes, persuasive words and clear thinking, dignity in bearing, with humility and wisdom, unquestionable musical depth, with rare

*C.L. Koppikar
Pune 411 004.

[A keen student of sitar and disciple of Pt. Arwind Parikh. Had association with Pt. Ratanjankar.]

aesthetic perceptions of ragas coupled with compositional skills — Ratanjankarji stands out, with these qualities, as an ideal Guru/Professor of Music, an academician in persuit of excellences, in the firm footsteps of Pt. Bhatkhande. Dedication of such men has influenced generations of musicians and musicologists.

Both, Pt. Bhatkhande and Pt. Ratanjankar have ever inspired me to follow them.

*R.C. Mehta

Those Memorable Days

It is four decades — I was lucky to be a student of Anna Sahib Ratanjankarjee. We had nice days along with the other male students like Shri. Birendra Kumar Phukan (Gold Medalist) and Shri. Saru Bordoloi (Kathak) who bagged lots of attention and affection from him.

I went there in 1946 July and came with a successful result in 1951.

So long I had the opportunity of attending the progrmmes of famous North Indian Ustads in our College Auditorium. They were Ustad Faiyaz Khan Sahib, Allauddin Khan Sahib, Rajabhaiya Poochhwale Sahib (Principal, Gwalior), Ahmedjan Thirakawajee (Tabla Samrat), Munne Khan Sahib and Pandit Rabi Sankar (Sitar), Jog Sahib (Violin) Kalyanpurkar Sahib (Kathak) Shri. G.N. Natu Sahib (Ex. V.P.) and Ali Akbar Khan (Sarod) etc.

I got an opportunity to join 15th August Chorus celebrated in the Govt. House (U.P.) during the days when Nightingale of Bengal Sarojini Naidu then was the Governor of U.P. and during Panditji's Ministry joined lots of programmes with Anna Sahib and other professors in 26th January and 15th August. Anna Sahib taught us a few 'Varnams' of his own composition.

He was such friendly with us that we have occasions of joining Ganesh Puja, Janmasthami, festival and learnt many Bhajans (Special). He was like our elder brother. Such a friendly person was he, specially I being an Assamese only girl student, got special attention as I was from Far East (or those days). As I was a scholarship holder I could not provide private tuition. Anna Sahib and Chhotu Master Sahib heartily helped me from all side for which I am ever grateful to them. Those days are dreams for me. I cannot write my five and half years Lucknow days briefly. So I am giving a little sketch because if I start elaborately I will need at least two exercise books to finish. Now I think it is better to teach my students whatever I bagged from them. I am lucky to attend the First Bhatkhande Anniversary which was started at the time of Principal S.N. Ratanjankar — our Anna Sahib. It was 19th Sept., 1946.

I have attended the musical concert, started early morning with the hymn specially written and composed by late (V.P.) G.N. Natu. The programmes of this Anniversary

*R.C. Mehta
Baroda 390 001.
[Gen. Secretary, Indian Musicalogical Society, Baroda, Ex-principal of M.S. University of Baroda].

continued 4 days without stopping Tanpura. I have been lucky to listen to the programmes of above mentioned Ustads at a time and it had enchanted me.

Anna Sahib was a very strict and reserve person, but he was very affectionate on the whole.

***Mrs. Mira Das**

The Real Examiner

The year was 1947 — the venue — The Central School in Varanasi, time morning. I was only appearing for my Matriculation examination no more. But there was this August Body of five Judges which included Shri Krishna Ratanjankar to examine me, naturally I was overwhelmed. I still remember i.e. was examined for full one hour. Somehow I belong to that cateogry who do not suffer from stage fright or by the presence of important people. I was well aware of Pt. Ratanjankar's standing as a musician. Not only was he one of the most important musicians but also a very learned one. I think it was because of my Guru — Ustad Faiyaaz Khan that I attracted so much attention. At this stage of my life it is difficult to remember what were the questions. I was asked by the Board but the question I was asked by Ratanjankar I do. He had asked me to sing bandishes of "Basant" and "Purabi" — and also elaborate. "Basant" was the rag not included in our course; fortunately I knew it. That I think impressed him and others. Soft spoken with very intelligent eyes Ratanjankarji was apparently very good with students. The last question I was asked was about 'Rupak' taal which I couldn't answer. I fumbled. Seeing how upset I was, he concluded the session by saying "Don't worry, everything will be alright". And it was. Out of 100 I had got 96 !

I was far too young to be able to make a conversation with such a giant but I had the pleasure of listening to him at our own residence. In Agra we had a huge house with 14 rooms and a huge verandah with a stair case. My father — Late J.C. Taluqdar being a lover of music — we often had House Concerts. I still remember an occasion when Tasadduq Hussain Khan and Girija Shankar almost came to blows over the definition of Thumri.

Between my Matriculation and Graduation, one day Baba had organized a morning session of our house concert, the artist being no less than Shri Krishna Ratanjanjar. Being a student of an important gharana, I was also trained to be a keen listener. Excitedly I waited. I must say I was a little disappointed when he started because it didn't come up to my expectation. But slowly he warmed up. It was a superb recital of Debgiri Bilawal. Though it is a difficult Rag, he sang it beautifully.

*Mrs. Mira Das
Tezpur (Assam)
[Graduate of Bhatkhande Sangit Vidyapeeth.
Presently principal, Music College, Tezpur].

His Ragdari was impeccable, as was his pronunciation. Also it was full of emotion. It was an experience.

I did have occasions to meet him but was not fortunate enough to get close, though my father knew him well. In another sense I know him better than my father because I have read most of his books. His compositions which are hauntingly beautiful are a part of the musicians treasury.

***Dipali Nag**

The Torch Bearer

Remembering great men is a soul-lifting experience. A sublime feeling fills your whole being at the moment If it is an outstanding artist the entire country itself cherishes his rare achievements. It spurs the members of the succeeding generations to attain greater levels of excellence. Pandit Ratanjankar is one such outstanding personality who adorned the music world of yesteryears. He was a leading light of the Agra Gharana — a great singer and a mentor of no mean order.

Panditji and myself learnt under one Guru — the legendary Faiyaaz Khan Sahib, he being of course my senior in age. In fact by the time I went to learn at Baroda he had finished his studies and gone to Lucknow. Though I could not keep company with him while learning I heard a lot of his music through the Radio which moved me intensely. He had extraordinary control over layakari and his boltaans were impeccable. His voice had an ethereal quality and his style was very attractive. His singing had a mature ring about it.

I had once an opportunity of meeting him at very close quarters. He was much a person who would leave a permanent impression on you, even when you met him only once. I have also the memory of that meeting etched on my mind permanently. In those days 'tapes' were not yet used for recording music. The 'Audition test' for singing on the Radio involved the senior vidwans who conducted the test and those who appeared for the test had to sing and answer all the questions then and there. It is one such 'Audition test'. He was the examiner and I was the one sang and answered questions.

The interview took place at Malleswaram Sangita Sabha. Panditji welcomed us smiling sweetly. This put us at ease so much that I could sing effortlessly. Added to that, when once he knew that I came from Faiyaaz Khan Sahib's talim he did not enlarge much on questions. After the examination Panditji in an expansive mood talked for some time about the exclusive features of the Agra gharana. His exposition brief though, was astounding. "Taans and suravat alone does not make good music. Taan, boltaan, ghasit, meend in consonance with navarasa

*Dipali Nag
Calcutta
[Disciple of Ustad Bashir Khan and Tassaduq Khan of Agra Gharana.
Presently associated with S.R.A., Calcutta].

bhavas blended into the body of melody alone would make great music" he explained. He also sang and brought out the meaning of all these points clearly. This made that day memorable and we considered ourselves fortunate in getting a chance to sing before this great master.

Pandit Ratanjankar was a great singer, but more than that he was an ideal teacher who spread the message of music to a vast circle of dedicated youngsters. He inspired a whole new generation. In music apart from the usual practitioner it is the teacher who bears the burden of keeping the classical tradition pure and passed it on to the coming generation. Panditji is one such torch bearer and his service to the world of classical music can never be forgotten. May his memory light our path.

*R.V. Naik

The Absorbing Instructive Sessions

The earliest memory dates back to 1941-1942. By then I had made sufficient progress in music so as to perform in the public for two to three hours and I was called upon to sing from the Mysore Akashwani in their 90 min. Friday night concerts. From childhood I had so great fascination and love for dear Nandamam (and still have) that whenever he used to come to Shirali I used to be sticking to him like a leech and learn whatever I could specially during Ashtavidhan musical sittings which used to go for as long as 30 to 40 minutes! (mainly Madhyalaya Khyals). No doubt then he would talk about these things to Anna Saheb and perhaps he became inquisitive about my progress also in music and took time to tune in to the radio and listen to me! In those days with low power transmitters he must have really strained his ears He seemed to have liked a particular Taan pattern etc., which I came to know later was his forte which I came to know from Nandamam. This only indicates that he had no bias in listening to young or old and further emphasises his deep love and regard for his own Shishyas — Dr. S.C. R. Bhat or else, he would not have bothered to listen to an ameteur at such long distance.

It was in 1946-47 was regularly attending his evening practice sessions in his Forjett Hill residence with mainly Bhat Saheb on the Tanpura and sometimes any other disciple on the other Tanpura. Alaap alone used to go on for about 45 minutes and later a vilambit and drut khyals for another hour or so. These sessions were absorbing and instructive. I had the opportunity to attend to his regular concerts in Bombay Music Circle in the late evenings when he started

*R.V. Naik
Bangalore 560 018.
[Renowned Harmonium accompanist and had accompanied Atta Hussian and Faiaz Hussain Khan on ample occasions. Had training both in Karnatic and Hindustani style.]

with Goud Malhar. The intricate alaaps and Tan pattern which he sang that night are evergreen in my memory even today and I have yet to hear another artiste of the like ! It was highly intellectual music with variety in Swara combinations and inter-play in Swara, Laya and Taal, not to speak of the avirbhav — tirobhav of Malhar Angs. It was then I had virtually become a fan of his music and student of Eklavyabhav.

Later it was only in 1952—63 (?) I had the previlege and honour to host him at my residence at Jayanagar at Bangalore when he came to address (the address is available in printed booklet. I hope you have got it) a convocation of a music academy there. We all enjoyed his company with his aide enthusiastic Yashwant Mahaleji and we used to have some evening sessions when free during these days. I took Tanpura and started Alaap in Narayani one evening. In about 5 minutes Anna Saheb joined and started instructing me in the method of Alaap, specially the 'Gamakas'. One particular Gamaka — सा to प (the Hick-up style) was taught over and over again — may be 7 to 8 times until I could get it properly, when he left at that with a great laugh. A very tenacious teacher indeed !

An instance comes to my mind. At that time he had submitted a well researched paper on Indian Classical Music for inclusion in the Kannada Encyclopaedia which Karnataka Government was about to bring about. The remuneration was delayed for quite long and though he made several attempts to expedite. After several months they paid a meagre Rs. 50/- saying that the amount be treated as an humble honorarium of the Government which was more a name and recognition for him than money! He wrote to me in a postcard that he had put in so many manhours of laborious research in producing the piece of knowledge and what a way of recognition!

***N.S. Padukone**

'Gayak' and 'Nayak'

The name of Acharya S.N. Ratanjankar rings several musical bells in the minds of both performing musicians and aspiring students. It has been said that there are two distinct categories in the musical world which call themselves by the names of 'Gayak' and 'Nayak'. A performing musician combining both these talents is rare to find. Acharya Ratanjankar was both a 'Gayak' and a 'Nayak' and this of course is a unique achievement.

In my capacity as a performing musician, it is an honour to write these few words conveying my respect and admiration for the valuable and distinctive contribution that Acharya Ratanjankar has made to the music of India. His excellent

*N.S. Padukone
New Delhi - 37.
[Son and disciple of Pt. S.C.R. Bhat. Had association with Pt. Ratanjankar.]

composition of a vast number of 'Chizas' which carry with them the flavour and charm of our 'old time' — Bandishes, can well be treated as useful and significant guidelines for aspiring musicians — both in the field of vocal and instrumental music — and again followers of different gharanas and not only followers of Agra gharana.

In conclusion, whilst paying my humble respects to Acharya Ratanjankar, it would be no exaggeration to say that the future of Indian music would be more secure and bright, if we have more personalities like Acharya Ratanjankar to lead us as beacon lights.

Arvind Parekh

Ambassedor of The Past

Bhatkhande's interaction with Subbarama Dikshitar at Ettaiyapuram, nearly nine decades ago heralded perhaps, the first constructive deliberation between Hindustani and Karnatic Systems of Indian Music. Venkatamakhin's Melakaarta scheme did influence Bhatkahnde in his 'Thaat' classification of Ragas. Pandit Ratanjankar was one of the few Hindustani exponents who recognised Lakshana values in both systems. We recall, renditions apart, his active participation in the proceedings of the Music Academy, Madras. The papers presented by him reminded us of his attempts to synthesise similar facets of the two systems — he was a symbol of unity in diversity. Quite often, he was the solitary performers from the Hindustani system. His classism captivated Karnatic oriented audiences, without any need for latter-day improvisations like 'juggle-bandhis'.

Pandit Ratanjankar will be remembered for his pedagogic achievements too, apart from being a performing artist. Pt. Bhatkhande's influence on Pandit Ratanjankar, perhaps was the prime cause for his catholicity in classical values. His approach to non-Hindustani listeners was persuasive and pervasive — not omnisonorous or imposing. Many persons in the South learnt Bhajans like "Pagh Ghungroo Bandh" and "Payoji maine Ram ratan dhan" from Pandit Ratanjankar's renditions thereof.

We remember and revere him as a soft collossus, as a self effacing yet sincere ambassador of the past, who paved the way for positive exchange between the two Indian Music Systems.

***D.K. Pattammal.**

*D.K. Pattammal
Madras 600 085.
[Wellknown musician of Dikshitar tradition of Karnatic music of international recognition.]

*Arvind Parekh
Bombay 400 023.
[Eminent Sitar maestro Trustee, S.R.A. Calcutta & Chairman, S.R.A.'s Western region, Bombay. Senior disciple of U. Vilayat Khan.]